Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

जन ज्ञान

४ अप्रैल १९७६

रविवार : २३ चैत्र २०३२

हिन्दी साप्ताहिक

मूल्य ५० पैसे

आर्यसमाज संस्थापक : युग प्रवर्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

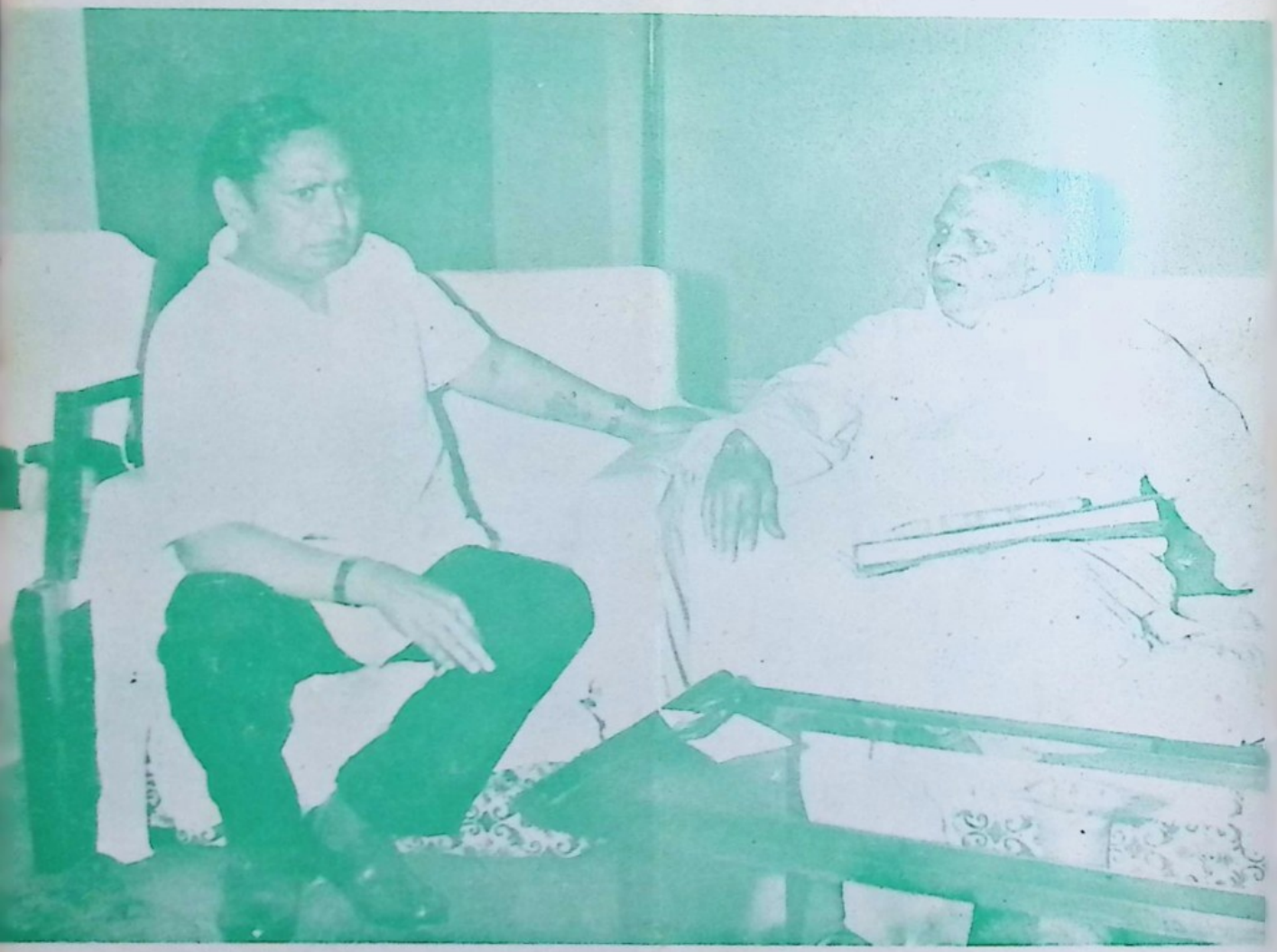

नैपाल के राजदूत महामहिम श्री कृष्ण बाम मल्ल से : वेद भाष्य विमोचन के अवसर पर
वेद महिमा पर विचार प्रगट करते हुए संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्
कृण्वन्तो-विश्वमार्य्यम्
जनराज
वेदाः
हिन्दी साप्ताहिक
नई दिल्ली

वर्ष १ ● रविवार २८ मार्च, १९७६ : २३ चैत्र २०३२ ● अंक ८

सम्पादक
राकेश रानी

सह-सम्पादक
कु० आभा
दूरभाष : ५६६६३९

पता :
वेद मंदिर
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग
[निकट ३१, नाईवाला]
करौल बाग, नई दिल्ली-११०००५

वार्षिक मूल्य २०)
विदेश में ५ पौंड : हवाई डाक से
३ पौंड : समुद्री डाक से
आजीवन ३०१ रु०
वर्ष १ : अंक ८

२३ चैत्र : संवत् २०३२
दयानन्दाब्द : १५१
सृष्टि संवत् : १९६०८५३०७६

सम्पादकीय

बाल कटाने का फैशन : हाय मम्मी : हाय डैडी : हाय हिप्पी : हाय जमाना

कैसा समय आया है, सबके मन पर अंधेरा छाया है। सभी को उलटा रास्ता भाया हैं, शब्दों के अर्थ बदल गए, धर्म, ईमान बदल गया, सपना छलक गया।

हालत पर कभी रोना आता है, कभी गुस्सा, कभी शर्म और कभी हंसी। आखिर क्या हो गया है हम सबको? अंग्रेजों के शासन में हमने अपनी संस्कृति को बचाया था और आज अपने शासन में हमने अंग्रेजी संस्कृति को बड़े प्यार से अपनाया है।

कभी सुना था आपने, आर्य परिवार की महिलाओं को बाल फैशन के कटाते। आज एक नहीं अनेक उदाहरण हैं, पति नेता, पत्नी-बेटी के बाल कटे। उन्हें देख कर सिर लज्जा से झुक जाता है, पर कौन कहे, किसे कहे, कैसे कहे, सब समय का फेर है।

घरों में माता-पिता शब्द सुनने के लिए कान तरस गए हैं। मम्मी-डैडी शब्द साधारण चपरासी परिवारों तक ने अपना लिया है। अब तो नया फैशन हाय मम्मी, हाय डैडी संबोधित करने लगा है। जब मैंने यह शब्द सुने तो लगा कि कहीं कोई मर तो नहीं गया। पर सब को हंसते देख जब जानकारी की, तो पता लगा कि यह तो आधुनिक ढंग है।

इस आधुनिकता ने नारी को नर और नर को नारी का रूप देने का प्रयास किया है। बिगड़े दिमागों ने ऐसी स्थिति बना दी है कि नारी के स्वाभाविक भूषण दूषण माने जा रहे हैं।

प्यार नहीं, ममता नहीं, दुलार नहीं शृंगार नहीं, रह गयी है केवल उच्छृंखलता और उद्दाम वासना का वीभत्स प्रदर्शन। शिक्षा जहां, जितनी बढ़ रही है उतना ही अधिक स्थिति का पश्चिमीकरण बढ़ता जा रहा है।

हम और आप जो भारतीयता का उपदेश देते हैं, हमारे घरों में भी बच्चों में अंग्रेजियत छायी है। राजधानी में बहुत दिनों बाद एक शिक्षित परिवार देखा, जहां बच्चों को अम्मा, पिता जी कहते सुना, अन्यथा इन शब्दों को सुनने के लिए कान तरस गए हैं।

मम्मी-डैडी का भूत, हाय-हाय का नारा और बाल कटाने का फैशन यदि इसी क्रम से बढ़ता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब चारों ओर इन्हीं का राज्य होगा।

पर क्या इस स्थिति को भारतीयता के पुजारी सहन करेंगे? क्या हम अपने आस-पास इस वातावरण को पसन्द करेंगे। क्या समय का प्रभाव हमें अपने आदर्शों से भटका देगा, यह प्रश्न हैं, जिनका उत्तर आपको आज देना है!

—राकेशरानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

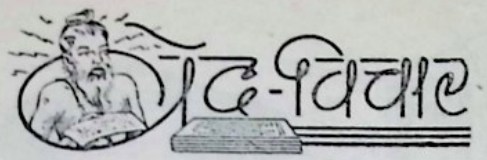

अग्निर्होता कविक्रतुः सयश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिराचमत् ऋग्वेद १-१-१०५

अविनाशी, सत-रूप, सृष्टि-कर्ता, तेजस्वी।
अद्भुत-शक्ति-निधान, श्रेष्ठ सब से, वर्चस्वी॥
दिव्य गुणों के साथ, नाथ! जिनको नित धारें।
विनय यही है आज, हृदय में आप पधारें॥

प्रार्थना

निरन्तर भटकते हुए प्रगाढ़ अन्धकारमें प्रभु तुम्हारी ज्योति को निरख, अंतस् आह्लाद पाता है। नित्य कर्म करते, सोचते हुए, हम कुछ पाना चाहते हैं, पाकर ऊंचे उठकर, स्वप्न सी भावनाओं को सत्य, प्रत्यक्ष कर, हम आनन्द सागर की लहरों से अठखेलियां करना चाहते हैं। हे अविनाशी! सत्-रूप विभो! चिर अनंत की प्रतीक्षा में विश्व-उदधि के तीर बैठकर नियति चक्र की सीमा का अवगुंठन पट खोल प्रिय! हम चाहते हैं, तेरी-नित्य प्रवाहित शाश्वत मधु वीणा की झंकृतियों का श्रवण।

देवाधिदेव! उल्लास! हास संग निरन्तर प्रगति की ओर जाते हुए हमें, विश्व के अणु अणु में झंकृतिएं प्रदान कर! और त्राहिमाम—त्राहिमाम की करुण स्वर लहरी, नाथ! शून्य में लय कर।

व्याकुल, त्रस्त धरती में स्वामी! तुम्हारी छटा प्रभासित हो, तुम्हारा उज्ज्वल अजस्र स्रोत दिग् दिगन्त में फैले, और शान्ति की मधुर मंदाकिनी बनकर यह पीड़ा की भावनाएं—स्वप्न बन सदा के लिए समस्या रह जाएं।

आप सर्व शक्ति नियंता दिव्य गुणों के धाम हैं। चराचर को भी कीजिए प्रदान, अपनी संपूर्ण अनुभूतिएं। हम संसृति की थिरकती स्वर लहरी से प्रिय! आप से यही तो कह रहे हैं कि आप हमारे मन मन्दिर में पधारें। पधार कर हमारी सारी कालिमा धो दें। सारे पाप बहा दें, सारी पीड़ा हटा दें, और प्रकृति की मधुर चितवन से हम, प्रभु! तुम्हें खोजते हुए, तुम्हीं में लीन होकर, तुम्हीं को पा लें। यही हमारी चाह है।

यह चाह पूरी करो प्राण! पधारो देव! मैं अपनी साधनाओं का दीप लेकर हृदय की गहन घाटियों में तुम्हारी पूजा करूंगी। तुम्हें निरख सकूंगी, रजकण में, अंतस् के शुभ मंगलमय स्थल में, तब समझूंगी, मानव जीवन की सफलता पायी मैंने।

जीवन को न बहने दो इस बहती धार में। मेरे सभी कुछ तुम हो स्वामी! तुम्हीं को पुकार रही हूं नाथ! रक्षा करो! नियित चक्र आधार।

तुम्हारी राह की पथिक
राकेश रानी—

आकर्षक वैदिक साहित्य

१. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम

लेखक—श्री पं० शिवकुमार शास्त्री काव्य-व्याकरण तीर्थ, संसद् सदस्य। मूल्य १)५०

पं० शिवकुमार जी शास्त्री आर्यसमाज के पुराने महोपदेशक रहे हैं। पिछले ३० वर्षों के अपने अनुभवों को उन्होंने "धरती का स्वर्ग" नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है। गृहस्थाश्रम को कैसे स्वर्ग बनाया जाए? इस विषय में शास्त्री जी का मार्गदर्शन सभी के जीवन को नयी प्रेरणा देने में समर्थ है। मूल्य लागत मात्र १)५० है।

२. उपदेश-मञ्जरी

महर्षि दयानन्द के उपदेशों का यह संग्रह प्रचार की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य २), किन्तु १०० मंगाने पर केवल १००) सैकड़ा।

३. धर्म का सार

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित यह पुस्तक प्रचार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साधारण व्यक्तियों को समझाने के लिए इसे ६ कथाओं में प्रस्तुत किया गया है। मूल्य १) किन्तु १०० मंगाने पर ६५) सैकड़ा,

४. महान् दयानन्द मूल्य १)५०। १००) सैकड़ा

महर्षि दयानन्द को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करते हुए पं० शिवदयालु जी ने इस अनमोल पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

५. आदर्श परिवार ४०) सैकड़ा

राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री जुगलकिशोर जी लिखित यह पुस्तक प्रचार व विवाह आदि पर बांटने के लिए विशेष उपहार है। मूल्य ६० पैसे।

६. प्रभु के चरणों में मूल्य १.५०।

प्रसिद्ध विद्वान् पं० हरिशरण जी द्वारा सामवेद के कुछ मंत्रों की सरल व्याख्या प्रार्थना रूप में प्रस्तुत की गयी है। मंत्रों को पढ़ते हुए साधक भाव विभोर हो जाता है।

७. वन्दना के स्वर मूल्य ८)

संपादक—श्री क्षेमचन्द्र सुमन डिलक्स १५)

जन-ज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

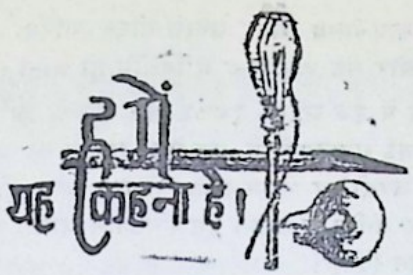

प्रश्न उलझाइए नहीं....

समय-समय पर आर्यसमाज के नेतागण यह प्रश्न उठाते रहते हैं कि आर्यसमाज अब क्या करे? इस प्रश्न पर समय-समय पर गोष्ठियाँ भी होती रहती हैं। हमने भी इस सारी समस्या पर गहरी दृष्टि से विचार किया है और हमारा मत है कि मूलत: यह समस्या उठाना ही ठीक नहीं कि आर्यसमाज अब क्या करे?

जो करना है उसके सम्बन्ध में जो निर्देश ऋषि दयानन्द दे गये हैं, वे ही हमारे मार्ग दर्शक हैं। वस्तुत: आर्यसमाज की स्थापना ही एक निश्चित कार्यक्रम के लिए हुई थी, वह कार्यक्रम पूरा करने का संकल्प प्रत्येक आर्य सदस्य बनते हुए लेता है।

इसलिए आज की समस्या यह नहीं है कि आर्यसमाज क्या करे? अपितु यह है कि जिस लक्ष्य के लिए आर्य समाज स्थापित हुआ था—उस लक्ष्य को कैसे पूरा किया जाये?

आर्यसमाज को स्थापित करते हुए ऋषि ने क्या-क्या सपने देखे थे, क्या-क्या कल्पनाएं की थीं, क्या वह सब पूरी हो चुकी हैं? वेद ध्वजा भू-मण्डल पर फहराने का लक्ष्य क्या पूर्ण हो चुका है? वेद की ऋचाओं का संगीत क्या गीत बन कर भू-मण्डल में गूंज रहा है?

उत्तर है नहीं—

तो फिर नयी कार्य योजनाओं का क्या अर्थ। आर्य समाज का काम है दयानन्द का काम। जब तक वह अधूरा है, तब तक कुछ और सोचने की गुंजाइश कहां है?

आर्यसमाज कोई मत नहीं है, आर्यसमाज कोई वाद नहीं है, आर्यसमाज कोई दल नहीं है यह तो एक यज्ञाग्नि है जिसमें संसार ने अपने अज्ञान की आहुति देनी है, और ग्रहण करना है, नया सत्य प्रकाश!

आज देव दयानन्द का आर्यसमाज कहां है? त्यागी, तपस्वी, साधक ब्राह्मण रूप पवित्र संगठन कहां है? क्रांति का दीप्त स्फुल्लिंग-चेतन प्रवाह कहां है?

सभाओं में स्वार्थ है, चुनाव है, नारे हैं, घोषणाएं हैं, पर काम नहीं है। भवन बहुत हैं पर उनमें प्राण नहीं है। आज इस विशाल आन्दोलन का आत्मा गहरे अंधकार में ढका है।

उपदेश हैं, उत्सव हैं, सम्मेलन हैं पर "अग्नि" नहीं है। अग्नि का नेतृत्व नहीं है। प्यार का बन्धन नहीं, स्नेह की धारा नहीं, उत्साह नहीं, उमंग नहीं, कर्म नहीं, बस लकीर पिट रही है। कारवां खड़ा है, सो रहा है।

बात बातों से हरगिज बनेगी नहीं,
काम करना पड़ेगा, अगर जिन्दगी
की तमन्ना बची है कहीं।
जमाना बदलना है तुमको अगर,
तो सब कुछ अपना चढ़ाना पड़ेगा।

हमारी बातें कड़वी होती हैं, लोग नाराज भी हो जाते हैं पर हमारे मन में जो पीड़ा है, उसके कारण कहे बिना रहा भी तो नहीं जाता। वर्तमान चाल हमारे नेताओं की, आर्यसमाज को संसार में क्रांति के लिए तैयार नहीं कर सकती। जिनके पास समय नहीं, वे आर्यसमाज को प्राण नहीं दे सकते। वैदिक सिद्धान्तों पर प्रबल प्रहार करने वाले व्यक्ति, वाक् शूर जब तक हमारी नैया के खेवैया रहेंगे तब तक हम इसी तरह मंझधार में घूमते रहेंगे।

बड़े-बड़े मंदिर खाली पड़े है। रुपया बैंकों की शोभा बढ़ा रहा है। व्यापार और संग्रह ही धर्म बन चुका है। तो फिर विचार परिवर्तन यज्ञ में आहुति कौन देगा? कौन कटाएगा अपना शीश, इसलिए कि 'ओ३म्' पताका सर्वत्र लहराए।

संसार का सब से महान् क्रांतिकारी आन्दोलन आज अपनी ही दुर्बलताओं से पिछड़ गया है। अनेक मत-वाद-अज्ञान-अंधकार-गुरू-नकली भगवान नगाड़े बजाते बढ़ रहे हैं, और हम सो रहे हैं, या समय को दोष दे रहे हैं।

किन्तु क्या सचमुच ऋषि दयानन्द के सभी भक्तों के शरीर का रक्त ठंडा पानी बन चुका है। क्या सभी इतने अधिक पथ भ्रष्ट हो चुके हैं कि त्याग-बलिदान की कहानी—कहानी ही रह जाएगी? कुछ करने या मरने के लिए क्या कोई आगे नहीं आएगा। ४ अप्रैल को आप आर्यसमाज स्थापना दिवस मना रहे हैं...यह दिवस क्या आत्म प्रशंसा के साथ मनाना ही पर्याप्त है? कितने नए सदस्य बनाएंगे, इस दिन? कितने सत्यार्थ प्रकाश बांटेंगे? कितने नए व्यक्तियों तक आर्यसमाज का सन्देश पहुंचाएंगे?

बहुत कुछ करना है, तेजी से करना है, समय जा रहा है, काम बड़ा है मंजिल दूर.....।

भाइयो! बहनो! युवको! ऋषि दयानन्द पर श्रद्धा हो तो **'आओ अपने रक्त से हस्ताक्षर कर शपथ लो जीवन की आहुति देने की।** धन-साधन सब हो जाएंगे पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बलिदानी वीरों को कहां से लाएं ?

काम करो, आगे बढ़ो ! यह देह फिर न मिलेगी, करो, कुछ ऐसा कि यह धरती स्वर्ग बनजाए। मनुष्य-मनुष्य के मध्य की दीवार गिरा दो। पापों के भवनों को मिट्टी में मिलाते हुए धर्म-सत्य-ज्ञान-मानवता-प्रेम के गीत गाते आगे बढ़ो।

ऋषि दयानन्द अकेले थे, हम उन के १०-२० अनुयायी भी यदि प्राण अर्पित कर लक्ष्य पूर्ति के लिए चलें··· तो विजय हमारे चरण चूमेगी।

हमने सदा जिन्दगी में विजय देखी है।
मौत भी डरती रही है हम से।
तूफानों में नौका बढ़ाते हैं हम।
हराए हमें ऐसी हस्ती नहीं है।
उतर जाए अपनी वो मस्ती नहीं है।

देश को आर्य बनाओ !

१९७६ में हम सारे देश में आर्य बनाने का आंदोलन आरम्भ करें। भारत के प्रत्येक नागरिक को 'आर्य' बनाने का संकल्प लेकर काम आरम्भ कर दो।

'आर्य' सदस्यता पत्र आप हम से बिना मूल्य मंगाइए और काम में लग जाइए।

सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि जीवन प्रत्येक नागरिक को दीजिए। अपने-अपने क्षेत्र में आर्य व्यक्तियों का जाल बिछा दीजिए। यदि आप के निकटस्थ आर्यसमाजों के अधिकारी सहयोग न भी दें तो भी काम कीजिए ! आपस में विरोध पैदा न करें। प्यार से सब को समझाएँ और काम में लग जाएं।

इस समय सोने का या आपसी विवादों का समय नहीं है। कुछ करना होगा, या मरना होगा। एक-एक क्षण मूल्यवान है। इसलिए बस सब कुछ भूल जाओ और स्मरण रखो, केवल एक बात—हमें ऋषि दयानन्द का काम करना है। हम ऋषि दयानन्द के अनुयायी हैं। वही हमारा नेता और मार्ग दर्शक है।

हमारे मस्तिष्क में और कुछ तो आता नहीं, सिवाय एक बात के कि प्रत्येक मूल्य पर दयानन्द का लक्ष्य पूरा हो ! हो सकता है कि यह हमारी बुद्धि का दोष हो, पर इस दोष पर हमें गर्व है।

हम चाहते हैं कि कुछ व्यक्ति हमारे जैसे ही निकलें और अपने मन-मस्तिष्क से और सब कुछ निकाल कर अपना सर्वस्व ऋषि के लक्ष्य हेतु अर्पित कर दें···पता नहीं इच्छा कब पूरी होगी ?

मानवता के भाग्योदय की वर्ष गांठ

मनुष्य रो रहा था, अंधकार में भटकता, अज्ञान में बहकता विनाश और मृत्यु के मार्ग पर चल था। निकट था कि सत्य-न्याय और उदात्त गौरव गरिमा की अर्थी उठती, और सब कुछ शून्य में विलीन हो जाता।

ऐसे में १० अप्रैल १८७५ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन बम्बई महानगरी में एक ऐसे संगठन का जन्म हुआ जिस ने धरती का भाग्य बदल दिया। उषा की किरणों के मोहक संगीत के समान इस संगठन ने आशा और सत्य को जीवन दिया।

मनुष्य ने फिर से आत्म विश्वास पाया। धर्म पर पड़ा आवरण हटा, और उस का प्रखर तेज फिर से ज्योतिर्मय हो—नयी रेखाओं के वितरण की प्रेरणा बना।

मत-वाद और तम का धूमिल वातावरण समाप्त हुआ, मनुष्य और मनुष्य के मध्य खड़ी भेदभाव की दीवारें काँपने लगीं, अन्धविश्वासों के दुर्गम गढ़ गिरने लगे, पापों के पर्वत धंसे और उगा एक ऐसा सूरज जिस के रहते अज्ञान का अंधेरा कहीं टिक न सका।

इस महान् क्रान्तिकारी संगठन का नाम था, आर्य-समाज ! इसके संस्थापक थे महर्षि दयानन्द सरस्वती। इस का उद्देश्य था, धर्म की स्थापना, अधर्म की समाप्ति। दुःखों की समाप्ति और आनन्द, सुख, शाँति का प्रसार।

आर्यसमाज वह प्रथम संगठन था, जिसने घोषित किया कि परमात्मा से मिलने के लिए किसी मध्यस्थ की, आवश्यकता नहीं। जिस ने बताया कि धर्म शाश्वत् है, उसमें महत्व व्यक्ति का नहीं, सिद्धान्तों का है।

धर्म की वैज्ञानिक परिभाषाएँ प्रस्तुत कर आर्यसमाज ने नास्तिकता को चुनौती दी। भोगवादी विचारधारा की जड़ें हिलाकर आत्मा और परमात्मा का सत्य स्वरूप प्रगट किया। ईश्वर से मिलने का मार्ग बताया और हजारों वर्षों से भूली सत्य शाश्वत परम्पराओं को पुनर्जीवित किया।

ऐसे महान् आर्यसमाज का स्थापना दिवस इस वर्ष फिर ३१ मार्च को पड़ रहा है। हम इस पवित्र ऐतिहासिक दिवस पर युग को नया जीवन देने वाले इस महान् आंदोलन को फिर से नयी शक्ति देने का व्रत लेते हैं।

हमारा निमंत्रण है उन सब को, जो सत्य, ज्ञान और मानवता के उपासक हैं, जो मानव की एकता में विश्वास रखते हैं कि आओ, एक बार फिर इस क्रांतिकारी युग निर्माता संगठन को जागृत करें। सिंह सो रहा है। सोए सिंह को जगाना है। नयी धरती पर नया सवेरा, धर्म से ज्योतिर्मय प्रकाश लेकर जागे और अगली शताब्दी, ज्ञान-विज्ञान सत्य और मानवता की प्रसारक हो। आत्मा को सब जानें और प्रभु से मिलने के लिए सभी शक्तियों का प्रयोग करें—इसी पवित्र भावना से हम इस युगान्तरकारी दिवस का स्वागत करते हैं।

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—श्री पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार

वेद प्रतिपादित कल्याण का मार्ग

१. चतुर्विध पुरुषार्थ

वैदिक साहित्य में मनुष्य की वाञ्छनीय वस्तुओं को चार भागों में बाँटा गया हैं—धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। इन्हीं को चतुर्विध पुरुषार्थ कहते हैं। इनमें काम, अर्थ व धर्म ये तीन पुरुषार्थ तो इस संसार में सम्पादनीय हैं, पर मोक्ष इस संसार से ऊपर उठ कर ब्रह्मभाव को प्राप्त करने का नाम है।

सांसारिक पुरुषार्थ-त्रयी को हम क्रमशः पृथ्वी लोक का विजय, अन्तरिक्षलोक का विजय तथा द्युलोक का विजय कह सकते हैं। मोक्ष इस लोक-त्रयी के विजय के बाद, त्रिलोकी से बाह्य उस शिवपुरी की प्राप्ति का नाम है। यह पुरुषार्थ-त्रयी ही क्रमशः तामस, राजस व सात्त्विक मनोवृत्ति से अन्य कृत-कार्यताएं (विजय साफल्य) हैं।

संसार में तामस विजय काम की प्राप्ति है। विज्ञान (Scientific Knowledge) वृद्धि के द्वारा विविध उपभोग्य पदार्थों की उपलब्धि को तामस विजय से सूचित कर सकते हैं। यही विज्ञान बीजरूप से ऋग्वेद के अन्दर उपलब्ध है। ऋग्वेद (ऋच् स्तुतौ to describe, praise) प्रत्येक पदार्थ के गुणों की स्तुति का वेद है, विज्ञान का वेद है। राजस विजय आर्थिक विजय है। नाना प्रकार के यज्ञों के द्वारा सब प्रकार के धन-धान्य की, सम्पत्ति की वृद्धि को हम राजस विजय यह नाम देते हैं। इन सब यज्ञों, कर्मों का प्रतिपादन यजुर्वेद में है। सात्त्विक विजय को धर्म की विजय कहते हैं। सात्त्विक मनोवृत्ति के द्वारा उपासक अपने को उपास्य से अभिन्न करने का प्रयत्न करता है। अपने तन, मन, धन को उपास्य के लिए छोड़ने को सन्नद्ध होता है। देश का उपासक देश के लिए, जाति का उपासक जाति के लिए, धर्म का उपासक धर्म के लिए शिक्षा का उपासक शिक्षा के लिए, संक्षेपतः किसी भी विचार का उपासक उसी विचार के लिए अपने सर्वस्व को त्यागने को उद्यत हो जाता है। यही ऊंची उपासना है, इसी उपासना को सिखाने वाला सामवेद है, उपासना 'वेद' है।

एवं इस पुरुषार्थत्रयी की विजय इस वेदत्रयी से होनी है। संसार से ऊपर उठने के लिए तो इस वेदत्रयी से भी ऊपर उठना होगा, त्रैगुण्य-विषया वेदा नि त्रैगुण्यो भवार्जुन, ये शब्द इसी भाव के सुन्दर रूप को सुव्यक्त कर रहे हैं।

२. जीवन्मुक्त

आज हमें मोक्ष के विषय में विशेष विचार नहीं करना। इस लेख का उद्देश्य संसार में जीवन यात्रा के शतशः मार्गों में से कल्याणमय मार्ग का प्रतिपादनमात्र करना है। सो मोक्षरूप तुरीय पुरुषार्थ आज के लेख की सीमा में आता ही नहीं, केवल कामार्थ तथा धर्म रूप से पुरुषार्थत्रयी कैसे प्राप्त की जा सकती है—यही आज हमें देखना है।

जीवन यात्रा के कामार्थ धर्म प्रथम तीन प्रयाणक (मन्जिल) हैं, तो मोक्ष चौथा प्रयाणक है। प्रथम प्रयाणक में सभी वैज्ञानिक (Scintists) हैं, जो Telegraph, Telephone, Cinemotograph, Motors, Gramophone आदि विविध यत्रों तथा नाना प्रकार के Etibles (खाद्य पदार्थों) आदि को आविष्कृत करके जीवन को सुखमय बनाने में रत हैं, नाना प्रकार के काम्य पदार्थों को एकत्रित करने में जुटे हुए हैं। द्वितीय प्रयाणक में त्रेता युग के वे याज्ञिक लोग थे जो कि नाना प्रकार के यज्ञों को करते हुए सब प्रकार के धनधान्य अर्थ में श्रीवृद्धि के प्रयत्न में निरन्तर ग्रसित (लगे हुए) थे। तृतीय प्रयाणक में वे लोग हैं जो कि देश, जाति व धर्म के उपासक बन कर देश, जाति व धर्म के लिए अपने प्राणों को भी छोड़ने के लिए उद्यत हैं।

इन तीन प्रयाणकों को पार किए हुए, चतुर्थ प्रयाणक में चलते हुए लोग ही जीवन्मुक्त कहलाया करते हैं। ये जीवन्मुक्त लोग, सब प्रकार से निःस्पृह होने पर भी लोक संग्रह (राष्ट्ररक्षा) के लिए कर्म करते हुए चतुर्थ मंजिल को भी तय कर जाते हैं और मोक्ष रूप जीवन यात्रा की पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) पर पहुंच जाते हैं। इन जीवन्मुक्तों का अद्भुत ऐश्वर्य होता है, विचित्र शक्ति होती है, ऐश्वर्यकारक इनके कर्म होते हैं। वस्तुतः सिवाय सृष्टि निर्माण के वे क्या-क्या नहीं कर सकते, "जगद्व्यापारवर्जमितरेषामेश्वर्यम्" जगद्व्यापार को छोड़ कर सभी कुछ करना उनके लिए सम्भव होता है। अनेक व्यक्तियों का सम्मोहन द्वारा संस्पर्श मात्र से रोगी का रोगमुक्त कर देना, अपनी विभूति के आंशिक प्रयोग का खेल ही होता है। यही ऐश्वर्य इन को लोगों की दृष्टि में परमेश्वर बना देता है। लोग उन्हें परमेश्वर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के रूप में पूजने लगते हैं। परन्तु हमें आज इन जीवन्मुक्तों की जीवन यात्रा की चर्चा (विचार) न कर, प्रथम तीन प्रयाणकस्थ व्यक्तियों के जीवन पर ही एक नजर डालनी किस प्रकार की जीवन यात्रा करते हुए हम कामार्थ धर्म रूप पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकते हैं।

३. तीन बन्धन

ब्रह्मचर्याश्रम विज्ञान वृद्धि का आश्रम है। इस आश्रम में रहते हुए व्यक्ति ने पूर्ण प्रयत्न से अपने ज्ञान की वृद्धि करनी है, साथ ही शरीर को सुडौल बनाना है, विज्ञान यज्ञ का उसने विस्तार करना है, तथा शरीर को पुष्ट बनाना है। अपने देह के अन्तरिक्ष में बृहस्पति (विज्ञान) तथा शुक्र (Vitality) इन दोनों नक्षत्रों का उसने उदय करना है।

यह समय है कि वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। इस आश्रम में रहते हुए उसने नाना प्रकार के यज्ञ यागादि को करना है। यहां उसने अपंच-यज्ञ (चोर—यज्ञत्यागी) न होते हुए, अपने जीवन को यज्ञमय बनाना है। ब्रह्मचर्याश्रम में किए गये विज्ञान-यज्ञ के विस्तार के बाद उसे अब कर्म यज्ञ का विस्तार करना है। "विज्ञानं यज्ञं तनुते, कर्मादि तनुतेऽपिच" तैतिरीयोपनिषद् का यह वाक्य यही तो कह रहा है। साथ ही ब्रह्मचर्याश्रम में जहाँ उसे केवल अपनी ही फिक्र करनी थी, वहां अब उसे एक पारिवारिक जीवन बिताना है। पहले यदि अपने सब प्रयत्नों का केन्द्र वह स्वयं था, तो अब उसे बन्धु बान्धवों का ही नहीं परन्तु पड़ोसियों तक का भी कुछ-कुछ ध्यान करना ही है। उसने अपने प्रयत्नों का क्षेत्र अब कुछ व्यापक कर लेना है। दूसरे शब्दों में दृढ़ संकुचित ग्रन्थि को कुछ ढीला कर लेना है।

अस्तु, यज्ञ-यागादियों को करते हुए अब उसे एक कदम और आगे रखना है। उस ढीली की जाती हुई ग्रन्थि को अब उसने और भी ढीला करके कुछ और चौड़ा करना है। अपने प्रयत्नों का क्षेत्र अपने को नहीं परिवार को ही नहीं अपितु अपने सारे देश को बनाना है। विज्ञान-काण्ड के अनुष्ठान के बाद अब उसने देश व जाति की उपासना करनी है। प्रथमाश्रम में यदि उसने विज्ञान-वृद्धि के द्वारा 'इडा' देवी (वाणी) की उपासना की है, तथा द्वितीयाश्रम में यज्ञ यागादि के द्वारा 'सरस्वती' (प्रवाह से चलने वाली, वंश-परम्परा से प्राप्त होने वाली संस्कृति व सभ्यता) को पूजा है, तो अब उसे अपना पोषण करने वाली व जन्म देने वाली 'भारती मही' की उपासना करनी है। यही तीन देवियों की उपासना है। प्रथम उपासना तामस है तथा द्वितीय राजस और ततीय सात्त्विक।

इन उपासनाओं से बन्धन ग्रन्थि उत्तरोत्तर ढीली होती जाती है। ऋणबन्धन शिथिल होता जाता है और इसके बाद तो वह अवसर आ जाता है जबकि उत्तरोत्तर शिथिल होती हुई यह ग्रन्थि बिलकुल ही भिन्न हो जाती है (भिद्यते हृदय ग्रन्थि:) ढीला और ढीला होता हुआ यह बन्धन बिलकुल ही टूट जाता है, मनुष्य बन्धन मुक्त हो जाता है—यही मोक्ष है। यही बन्धन का संन्यास है, यही दुःखों का अपवर्ग है, सब कष्टों का निर्वाण (शान्ति) है, यही दुःखों से शून्य कैवल्य की स्थिति है, यही श्रेयस है, यही अमृत है। परन्तु हमें तो आज इस अन्तिम निःश्रेयस के विषय में विचार ही नहीं करना। आज का विचारणीय विषय बन्धन-शून्य स्थिति न होकर, त्रिविध बन्धनों से बद्ध स्थिति ही है। यही तीन बन्धन उत्तम, मध्यम व अधम पाश हैं। इन तीनों से मुक्त होना प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। इन तीनों से मुक्त होकर अखण्डित स्थिति में पहुंचना ही मनुष्य का चरम उद्देश्य है।

४. यम-नियम

इन तीनों बन्धनों से छटने के लिए मनुष्य को किस प्रकार अपना जीवन यापन करना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हम जीवन को दो भागों में बांट लें। एक तो वैयक्तिक जीवन तथा दूसरा सामाजिक जीवन। शौच (पवित्रता), स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधानादि 'नियम' मनुष्य के वैयक्तिक जीवन से सम्बद्ध हैं, तो अहिंसा अस्तेय अपरिग्रहादि 'यम' मनुष्य के सामाजिक जीवन के अंग हैं। बन्धनों से छटने के साधनों को विस्तार से लिखना आज के लेख का विषय न होने से हम 'यम नियम' पर यहां अधिक विचार न कर पायेंगे। आज तो हमें इतना ही देखना है कि वैयक्तिक जीवन का मूल भूत वह कौन सा सिद्धान्त है, तथा सामाजिक जीवन में अत्यन्त आवश्यक वह कौन सा अंश है जिसका कि ठीक-ठीक पालन करने से हम इन बन्धनों को उत्तरोत्तर शिथिल करने में सफल हो सकते हैं। यह ठीक है कि नियमों का यथावत् पालन मनुष्य के वैयक्तिक जीवन को उन्नत करता है और धर्मों का पालन उसके सामाजिक जीवन के विकास का साधन है। परन्तु अभी तो हम दोनों प्रकार के जीवनों के व्यापक सिद्धान्त को ही देखते हुए यम-नियमों के विचार को यही समाप्त करते हैं।

५. दिन-चर्या

वैयक्तिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए सबसे प्रधानभूत वस्तु जिसकी कि प्राणिमात्र को आवश्यकता है, वह है 'स्वास्थ्य'। स्वास्थ्य के अभाव में किसी भी प्रकार के धर्मादि के अर्जन के सम्भव की तो कथा ही क्या है, लौकिक आनन्दों के उपभोग का भी सम्भव नहीं है। अस्वस्थ व्यक्ति कभी भी आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता, वस्तुतः धर्मार्थ कामादि सभी पुरुषार्थों का मूल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आरोग्य ही है। 'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' यह कथन अक्षरशः सत्यता से ओतप्रोत है। अस्वस्थ व्यक्ति का स्वस्थ (स्वर्ग आनन्द में स्थित होना) होना हो ही कैसे सकता है।

इस स्वास्थ्य की प्राप्ति के साधनों में एक साधन न केवल एक अपितु एक महत्त्वपूर्ण साधन, दिनचर्या का ठीक-ठीक पालन है। विषय व्यवहार से धातु-वैषम्य होकर अस्वास्थ्य की उत्पत्ति होती है। पशु-पक्षियों के अन्दर यह दिनचर्या का पालन नैसर्गिक रूप से विद्यमान है और परिणामतः वे मनुष्यों की तरह शतशः रोगों से आक्रान्त नहीं हैं। वे मरते भी हैं तो एक स्वाभाविक मौत मरते हैं, उनके राज्य में अकाल मृत्यु को स्थान नहीं है। उनके इस स्वस्थ जीवन के कारणों में से एक व्यापक सूत्र दिनचर्या का ठीक-ठीक पालन है। ये पशु-पक्षी (सिंहादि हिंस्र पशुओं को छोड़ कर), सामान्यतः सूर्योदय के साथ अपने-अपने काम में व्यग्र हो जाते हैं और दिन भर में अपनी आवश्यकतानुसार क्षुधामात्र निवृत्ति के लिए भोजनादि कर सूर्यास्त के साथ अपने काम को समाप्त कर विश्राम लेने लगते हैं। इन पशुओं का सोना-जागना, खाना-पीना, सभी आहार विहार स्वभावतः ही नियमित सा होता है और उसके फलस्वरूप उनका शरीर व्याधियों से अनाक्रान्त रह करके उनके जीवन को रोग कष्टों से शून्य बनाए रखता है।

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा" इस सिद्धान्त का ज्ञान तो पशुओं को नहीं होता, परन्तु Instinctively (स्वाभाविक बुद्धि से) इस सिद्धान्त का पालन वे करते ही रहते हैं। मनुष्य इस सिद्धान्त को जानते तो खूब हैं परन्तु अपने स्वातन्त्र्य के गर्व में अपनी Intellect के घमण्ड में अपने अहंकार के नशे में वे इसका पालन नहीं करते और परिणामतः उनका जीवन शतशः आधियों व व्याधियों से व्याप्त हो जाता है। यह पशुओं व मनुष्यों के स्वास्थ्य में अन्तर, दिनचर्या के ठीक-ठीक पालन व युक्ताहार विहार के महत्त्व को नितान्त व्यक्त कर रहा है।

६. पुरुषार्थ पूर्णता

'दिनचर्या क्या हो ?' इस पर हमें कोई विशेष बात नहीं लिखनी। देशकालानुसार कोई भी दिनचर्या बनाई जाए, उसका ठीक-ठीक पालन करना ही आज के लेख का प्रतिप्राद्य अर्थ है। हाँ, एक बात इस विषय में लिख देना आवश्यक है कि जो दिनचर्या बनाई जाये वह activity (पुरुषार्थ) से पूर्ण हो। यदि अपनी दिनचर्या में कोई व्यक्ति बहुत सारा समय आराम का, लेटने का ही नियत कर ले तो यह कोई दिनचर्या न होगी। दिनचर्या में केवल चक्र (wheel) का भाव नहीं है, अपितु एक चलते हुए चक्र (चर्—गतौ) का भाव है। जागता हुआ ही—पुरुषार्थपूर्ण दिनचर्या को निभाता हुआ ही मनुष्य विज्ञान को बढ़ा सकता है, नाना प्रकार के शिल्पादि यज्ञों के द्वारा ऐश्वर्य की वृद्धि कर सकता है। और प्रशंसा का पात्र बन सकता है। ऋग् यजुः तथा साम ऐसे क्रियाशील (active) पुरुष की ही कामना करते हैं (यो जागार तमृचः कामयन्ते०)। इस पुरुषार्थी को ही श्री की प्राप्ति होती है—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर भी उसी की मदद करता है (इन्द्र इच्चरतः सखा)। यह पुरुषार्थ ही सम्पूर्ण सुकृत्यों का भाजन बनता है और इस के विपरीत एक आलसी मनुष्य पापों की खान बन जाता है। (कलिः शयानो भवति, कृतं सम्पद्यते चरन्)। पुरुषार्थी मनुष्य ही सौभाग्यशाली हो सकता है—उसका भाग्य चमकता है (चराति चरतो भगः); परन्तु आलसी मनुष्य का भाग्य सोया रहता है और इस दुर्दव मनुष्य पर सब प्रकार की आपत्तियां पतित होती हैं। ऐहिक व आमुष्मिक सभी सुख पुरुषार्थ पूर्ण, नियमित जीवन वाले व्यक्ति को ही प्राप्त होते हैं। हम प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं कि 'ऋतं वदिष्यामि' ऋत को बोलूंगा। ऋत को अपने जीवन में ढालूंगा। वस्तुतः इस पुरुषार्थमय दिनचर्या को अपने जीवनों में अनूदित (Translate) करना ही ऋत का बोलना है—यही ब्रह्म के साक्षात्कार का प्रथम द्वार है। यही सूर्य और चन्द्रमा के समान चमकने का मार्ग है। हमारी परमेश्वर से प्रार्थना है कि हम प्रतिदिन—

'स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव'

सूर्य और चन्द्रमा की तरह इस कल्याण के मार्ग पर पूर्ण पुरुषार्थ से आक्रमण करते रहें।

७. सत्संग

निजी जीवन में जिस बात पर हमें जोर देना था उसका प्रतिपादन हम कर चुके। परन्तु मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने से केवल निजी जीवन को न बिता कर समाज के सम्पर्क में रहता हुआ जीवन बिताया करता है। उस पर संग का मंगल प्रभाव पड़ता है, उसकी प्रत्येक क्रिया में उसके साथियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यदि मनुष्य के आचरण-वृक्ष का बीज अनेक जन्म-जन्मान्तरार्जित वासनाएँ (संस्कार) हैं, तो उसके साथ (Companionship) वे परिस्थितियां व भूमियां हैं जिनमें कि उस बीज को अंकुरित हो कर फलना-फूलना है। 'जीवन को ढालने में साथ व संग का एक विशेष महत्त्व है' वस्तुतः इस बात को जितना भी महत्त्व दिया जाय—वह थोड़ा ही है। किन्हीं शब्दों में इस बात पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता। वस्तुतः अहिंसा आदि यम हैं तो सत्संग सब से बड़ा यम है—यही सत्य है।

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—पूनम सिंह

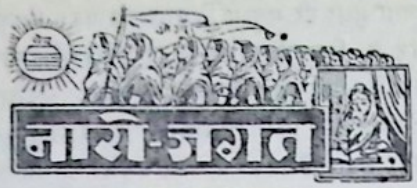

नारी के बढ़ते दायित्व

आज का युग विज्ञान प्रधान कहा जाता है। विज्ञान ने मानव को अनेक सुख सुविधाएं उपलब्ध कराई हैं। आज पूर्व की अपेक्षा अनेक कार्यों को करने में बहुत ही थोड़ा समय लगता है। यान्त्रिक युग ने आज प्रायः सभी कार्य सरल कर दिए हैं। किन्तु यह तो वर्तमान स्थिति का केवल एक ही पक्ष है। जीवन का एक अन्य पक्ष भी है, जिससे हम नेत्र नहीं मूंद सकते। अधिकाधिक भौतिक सुविधाओं के प्राप्त होने पर भी विशेषतः महिलाओं के दायित्वों में वृद्धि हो रही है।

महर्षि स्वामी दयानन्द द्वारा आर्य जाति को एक शताब्दी पूर्व निद्रा से जाग्रत कर वस्तुस्थिति से अवगत होने का आह्वान किया गया था। अब से अर्धशताब्दी पूर्व भी भारतीय समाज में नारी की स्थिति नितांत दयनीय बनी हुई थी। उसका जीवन घर की चार दीवारी तक ही सीमित था। गृहिणी के दायित्व उसके परिवार तक ही सीमित थे। अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियां ही उसकी चिरसंगिनी बनी हुई थीं। किन्तु देव दयानन्द और आर्यसमाज की कृपा से उसके जीवन को एक नया मोड़ मिला और वह पुनः गार्गी और मैत्रेयी के समान विदुषी होने की दिशा में प्रवृत्त हो सकीं। विज्ञान के आविष्कारों का लाभ भी आज गृहिणियां उठाने लगी हैं।

आज यांत्रिक साधनों की उपलब्धि ने घर के सारे कार्य को नितान्त सरल बना दिया है। नगरों में चूल्हा जलाने, चक्की पीसने आदि की मुसीबत से आज की नारी प्रायः मुक्त ही है। किन्तु फिर भी प्रायः उसके मुख से एक शब्द सुना जा सकता है "क्या बताया जाए, समय ही नहीं मिल पाता।" लगता तो है यह वाक्य वर्तमान सुख सुविधाओं के सन्दर्भ में बड़ा अटपटा, किन्तु वस्तुतः है यह सत्य ही। क्योंकि एक ओर जहां भौतिक सुविधाओं में वृद्धि हो रही है, वहां नारी के दायित्व भी बढ़ रहे है।

सर्वप्रथम घर को ही लीजिए। यों तो आज भी परिवार के संचालन का मुख्य भाग पुरुषों पर ही है, परन्तु स्त्री का कार्यक्षेत्र भी नगरों में तो और अधिक विस्तृत होता जा रहा है। अब नगरों में रहने वाली अनेक महिलाओं को घर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों में अपना दायित्व निभाना पड़ता है। आधुनिक स्थितियों में सम्बन्धों की बदलती हुई मान्यताओं ने नारी को अपने पति के परिचितों के साथ सामाजिक सम्बन्धों के निर्वाह का दायित्व भी सौंप दिया है। आज उसे घर में आए अतिथि और अभ्यागत का स्वागत सत्कार न केवल खान-पान की सामग्री अपितु उसके समक्ष प्रस्तुत करके ही करना पड़ता है, अपितु उनके मध्य बैठकर वार्तालाप में भी सहयोगी बनना पड़ता है।

अब यदि घर के बाहर की स्थिति पर विचार करें तो नारी को घर के बाहर जाकर सहशिक्षा एवं पुरुषों के सान्निध्य में आपसी समझ की भावना एवं समकक्षता इत्यादि मान्यताओं के विकास से नारियों के समक्ष नौकरी एवं व्यवसाय के प्रश्न भी उपस्थित हो गए हैं। इस प्रकार नारी का दायित्व पूर्व की अपेक्षा अधिक विस्तार पा गया है। अब नगरों में अनेक महिलाओं को भी पुरुषों के समान ही कार्यालयों में भी काम पर जाना पड़ता है। क्योंकि नगरों में जीवन निर्वाह पहले जैसा सरल नहीं रहा। हर परिवार को अपने रहन-सहन के स्तर को बढ़ाने की भी चिन्ता है।

इस भांति यह सुस्पष्ट है कि परिवर्तित परिस्थितियों ने महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी से अत्यधिक विस्तृत कर प्रशासन व राजनीति तक पहुंचा दिया है।

नारी आज सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रविष्ट हो रही है। अतएव उसके बाहरी परिवेश में बढ़ते हुए दायित्व हमारे समाज तथा जीवन पर क्या नवीन प्रभाव डाल रहे हैं, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है।

आज ऐसी स्थिति उत्पन्न हो रही है कि नारी के समक्ष एक नवीन समस्या उपस्थित है। वह यह कि क्या पाश्चात्य जीवन पद्धति का अंधानुकरण करती हुई वह भी अपने पद से च्युत हो जाए और अपने आपको पूर्णरूपेण पाश्चात्य जीवन पद्धति की अनुरक्त बनाले। यदि उसने ऐसा किया तो वह अपनी उस गरिमा से वंचित हो जाएगी जिसके कारण प्राचीन भारत में यह उद्घोष होता था "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" वस्तुतः नए दायित्वों को सहर्ष ओटते हुए भी भारतीय नारियों के लिए यही श्रेयस्कर होगा कि वह नवीन परिस्थितियों से तादात्म्य रखते हुए शील तथा मर्यादा के अपने संस्कारजन्य गुणों को अक्षुण्ण रखे और पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह को ही सर्वोपरि मान कर अपनी जीवन धारा का संचालन करे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—प्रो० रत्नसिंह एम०ए०

जीवन का मार्ग दर्शन

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

किसी कार्य को आरम्भ करने से पूर्व उसके लिए तैयारी करना आवश्यक होता है। चतुर्थ नियम में आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग करने के लिए सर्वदा उद्यत करके तदनुसार सब काम करने का आदेश इस पाँचवें नियम में दिया गया है।

इस नियम में सब काम धर्मानुसार करने का विधान है। धर्म शब्द सुनते ही बहुत से व्यक्ति बिदक जाते हैं। तथाकथित उच्च शिक्षित समुदाय में धर्म का उपहास करना एक फैशन बन गया है। केवल भारतवर्ष में ही नहीं वरन संसार के अन्य देशों में भी गत अनेक वर्षों से धर्म के प्रति घृणा और विद्रोह चला आ रहा है।

फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् वर्थोले ने अपने एक व्याख्यान में कहा था—

The day of Religion has passed and religion must now be replaced by science." अर्थात् धर्म के दिन चले गये। अब धर्म का स्थान विज्ञान लेगा। रूस के प्रसिद्ध विद्वान् टॉलस्टाय ने कहा था—"Religion is obsolete : belief in any thing but science is ignorance. Science will arrange all that is needful and one must beguided in life by science alone." अर्थात् धर्म का युग चला गया। विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर विश्वास करना भूल है। जिस किसी वस्तु की हमें आवश्यकता है, वह सब विज्ञान से प्राप्त हो जाती है। जीवन का दर्शन केवल विज्ञान ही होना चाहिए।

धर्म का विरोध करने में दो कदम आगे बढ़ाते हुए कुछ लोगों ने तो यह कहना शुरू कर दिया है। "आज जबकि विज्ञान ने अपने अद्भुत पूर्व आविष्कारों और अन्वेषणों से दुनिया की काया पलट दी है, हमें इस बात का अन्तिम फैसला कर लेना है कि धर्म और ईश्वर की कल्पना झूठी, हानिकारक और अवैज्ञानिक तो है ही, वह व्यक्ति और समाज के लिए अनावश्यक भी है, और इसलिए धर्म और ईश्वर को हमें सदा के लिए दफना देना है ताकि मानव समाज भय और आतंक से मुक्त होकर सही माने में और अधिक समृद्ध व सुखी बन सके। धर्म की कल्पना चाहे वह किसी भी खुराफाती दिमाग की उपज क्यों न हो एक ऐसी कल्पना है जिसके बल पर थोड़े से धूर्त और चालाक लोग आज तक अपनी उदर-पूर्ति करते आ रहे हैं।"[1] धर्म से समाज को क्या मिलता है, इस सम्बन्ध में आगे चलकर वही लेखक लिखता है, "धर्म से समाज को घृणा, वैमनस्य द्वेष, और कटुता के सिवा क्या प्राप्त हुआ है? धर्म ने समाज को झूठी कल्पनाओं, गलत परम्पराओं, रूढ़िपूर्ण मान्यताओं और अवैज्ञानिक विचारों के सिवा दिया ही क्या है?···धर्म ने व्यक्ति और समाज को पगु बना दिया है, उसे निकम्मा और अकर्मण्य कर दिया है, और जन मानस में नपुंसकता के विष बीज बो दिए हैं।"[2]

जीवन में धर्म की उपादेयता के सम्बन्ध में लेखक का स्पष्ट मत है, "धर्म और ईश्वर की कोई उपादेयता नहीं है। उलटे ये जीवन को अधिक कुंठाग्रस्त, कठोर, विचित्र और विपन्न बनाते हैं। धर्म जीवन की सरसता को समाप्त करता है, व्यक्ति की स्वतन्त्रता को हरता है। धर्म व्यक्ति को परान्नभोजी, निष्क्रिय, निकम्मा, ढोंगी, पाखण्डी और बेईमान बनाता है।"[3]

धर्म के प्रति घृणा और इस प्रकार के विष वमन के दो मूल कारण हैं। एक तो गत कई शताब्दियों में धर्म के ठेकेदारों (धर्मध्वजियों) का स्वयं का आचरण और दूसरे इन धर्म विद्रोहियों की अज्ञानता। विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि हमारी पृथ्वी नारंगी की तरह गोल है और सूर्य के चारों ओर घूमती है। परन्तु बाईबिल के आधार पर ईसाईयों का विश्वास रहा है कि पृथ्वी चपटी है। पृथ्वी को गोल कहने वालों को इन ईसाइयों ने यातनाएं दीं और उन्हें नास्तिक घोषित कर दिया। ईसाईयों के इस प्रकार के आचरण से वैज्ञानिकों के हृदय में धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक था। पौराणिक मत में भी इसी प्रकार के कई मूर्खतापूर्ण विश्वास चले आ रहे हैं। कोई कहता है कि पृथ्वी शेष अर्थात् सहस्र फणवाले सूर्य के सिर पर टिकी है। दूसरा कहता है कि यह बैल के सींग पर ठहरी है। एक वैज्ञानिक इन गपोड़ों को कैसे सही मान सकता है? परन्तु उससे एक भूल अवश्य हुई है। उसने धर्म के वास्तविक रूप को जानने के लिए परिश्रम न कर इन गपोड़ों को ही असली धर्म समझ लिया है। वस्तुतः धर्म और विज्ञान में विरोध है ही नहीं। "विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म उपासना

१. सरिता अगस्त (द्वितीय) १९७३ ई०। पृष्ठ ५१
२. वही, पृष्ठ ५४
३. सरिता, अगस्त (द्वितीय) १९७३ पृष्ठ ५५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेता और परमेश्वर से लेके तृणपर्यन्त पदार्थों का साक्षात्बोध का होना, उनसे यथावत् उपयोग का करना।[1] विज्ञान मनुष्य को धर्म और ईश्वर से विमुख नहीं करता वरन् उनकी ओर ले जाता है। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में "योगाभ्यास और विज्ञान के बिना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता।"[2]

विज्ञान के साथ धर्म का भी अर्थ जान लेना चाहिए। इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता आया है। यह शब्द संस्कृत का एक ऐसा शब्द है कि इसका अनुवाद संसार की किसी भी भाषा के एक शब्द में नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी भाषा में इसका पर्याय 'रिलीजन' समझा जाता है जिसका अर्थ एक ऐसे विश्वास से है जो कि मनुष्य का ईश्वर से, जिस पर वह आश्रित अनुभव करता है सम्बन्ध जोड़ता है।"[3] परन्तु धर्म शब्द का इससे अधिक व्यापक अर्थ है। यह शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है 'धारण करना' 'आलम्बन देना' 'पालन करना' किसी वस्तु के जो ऐसे गुण हैं जिनमें वह अपने रूप में धारित रहती है, उन गुणों को उस वस्तु का धर्म कहा जाता है। धर्म का अर्थ 'निश्चित नियम' व्यवस्था या सिद्धान्त या 'आचरण नियम' भी है। राजधर्म, प्रजाधर्म, वर्णाश्रम 'धर्म' में धर्म शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है।

महर्षि दयानन्द को नैतिक मूल्यों में सत्य, निष्पक्षता और न्याय अत्यन्त प्रिय थे। इन्हें वे धर्म का पर्याय समझते थे। इसलिये उन्होंने धर्म की परिभाषा यह की है, 'क्योंकि जो न्याय अर्थात् पक्षपात को छोड़ के सत्य का आचरण और असत्य का परित्याग करना है, उसी को धर्म कहते हैं। यही धर्म का स्वरूप और सबसे उत्तम धर्म है।'[4] जो पक्षपात रहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको 'धर्म' और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण, मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको 'अधर्म' मानता हूँ।"[5] धर्म की इस परिभाषा को स्वीकार कर तदनुसार आचरण करने पर धर्म के प्रति अनास्था, अविश्वास व घृणा स्वतः समाप्त हो जायेगी। स्वार्थवश मनुष्य जब अनेक धर्मों की रचना कर उसके अनुसार आचरण करने लगते हैं तो पारस्परिक संघर्ष व असंतोष अनिवार्य हो जाता है। महर्षि दयानन्द की स्पष्ट घोषणा है कि धर्म एक ही होता है अनेक नहीं। वे लिखते हैं, 'सब मनुष्यों के लिए धर्म और अधर्म एक ही है। दो नहीं। जो कोई इसमें भेद करे तो उसको अज्ञानी और मिथ्यावादी ही समझना चाहिए।'[6] इसी बात को महर्षि ने एक दूसरे ढंग से स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं, 'धर्म सबका एक होता है वा अनेक ? जो कहे अनेक होता है तो एक दूसरे से विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध ? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एक के बिना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो अविरुद्ध हैं तो पृथक् पृथक् होना व्यर्थ है। इसलिए धर्म और अधर्म एक ही हैं अनेक नहीं।'[7]

यहाँ यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि यदि सब मनुष्यों का धर्म एक ही है तो शास्त्रों में वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) तथा आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास) के पृथक्-पृथक् धर्मों का विवेचन किया गया है। इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि धर्म की यह भिन्नता व अनेक रूपता वस्तुतः वर्ण व आश्रम रूप में ही है। मानव रूप में सबका धर्म एक ही है और वह है सत्याचरण। यहाँ एक बात और विचारणीय है। महर्षि दयानन्द ने धर्म की परिभाषा में कई शब्दों का प्रयोग किया है, परन्तु सबसे अधिक बल सत्य पर ही दिया है। इसका स्पष्टीकरण महर्षि ने इस प्रकार किया है:—(प्र०) धर्म और अधर्म किसको कहते हैं ? (उ०) जो पक्षपात रहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, पाँचों परीक्षाओं के अनुकूल आचरण, ईश्वराज्ञा पालन, परोपकार करना रूप धर्म, और जो इसके विपरीत, वह अधर्म कहाता है। क्योंकि जो सबके अविरुद्ध वह धर्म और जो परस्पर विरुद्धाचरण सो अधर्म क्योंकर न कहावेगा।

देखो, किसी ने किसी से पूछा कि सत्य क्या है ? उसको उसने उत्तर दिया जो मैं मानता हूँ। फिर उसने पूछा, और जो वह मानता है, वा जो मैं मानता हूँ ? वह क्या है ? उसने कहा कि अधर्म है। यही पक्षपात से मिथ्या और विरुद्धाचरण अधर्म। और जब तीसरे ने दोनों से पूछा कि सत्य बोलना धर्म अथवा असत्य ? तब दोनों ने उत्तर दिया, कि सत्य बोलना धर्म और असत्य बोलना अधर्म है। इसी का नाम धर्म जानो।[8] धर्म के इस रूप को महर्षि दयानन्द ने प्रस्तुत नियम में पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। उनके मतानुसार धर्म का अर्थ है सत्य और असत्य को विचार करके करना। अर्थात् सत्याचरण धर्म है और इसके विपरीत अधर्म है।

सत्य और असत्य को विचार करके काम करने को ही सोच समझ कर, विचार पूर्वक तथा बुद्धि पूर्वक काम करना कहते हैं। अरस्तु ने मनुष्य को विचारशील प्राणी कहा है (Man is a rational animal) यदि वह बुद्धि

---

१. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदविषयविचारः पृ० ४५।
२. सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास पृष्ठ २७२।
३. 'R belief binding the spiritual nature of man to a uper human Being on whom he is conscious that he is dependent." —Standard di)tionary.
४. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म विषय पृष्ठ ११८।
५. सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश सं ३।
६. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म विषय पृष्ठ १२१।
७. सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लासः पृष्ठ २४६। ८. व्यवहारभानु।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का उपयोग नहीं करता तो वह निरा पशु समान है। आश्चर्य है कि अनेक मतमतान्तर वालों ने इस मौलिक बात की उपेक्षा करके धर्म में अकल (बुद्धि) का दखल (प्रवेश) वर्जित कर दिया। इसके फलस्वरूप अनेक अन्धविश्वासों ने जन्म लेकर धर्म के रूप को विकृत कर दिया। अपने इस विचार की पुष्टि में हम बाईबिल से दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, 'तव परमेश्वर ने उसे कहा कि तेरे हाथों में यह क्या है और वह बोला कि छड़ी। तब उसने कहा कि उसे भूमि पर डाल दे और उसने उसे भूमि पर डाल दिया और वह सर्प बन गई और मूसा उसके आगे से भागा। तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि अपना हाथ बढ़ा और उसकी पूंछ पकड़ले, तब उसने अपना हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया और यह उसके हाथ में छड़ी हो गई। तब परमेश्वर ने उसे कहा कि फिर तू अपना हाथ अपनी गोद में कर और उसने अपना हाथ अपनी गोद में किया। जब उसने उसे निकाला तो देखा कि उसका हाथ हिम के समान कोढ़ी था। और उसने कहा कि अपना हाथ फिर अपनी गोद में कर, उसने फिर अपने हाथ को अपनी गोंद में किया और अपनी गोद से उसे निकाला तो देखा कि उसकी सारी देह थी वह वैसा फिर हो गया। तू नील नदी का जल लेके सूखी पर डालियो और वह जल को तू नदी से निकालेगा सो सूखी पर लोहू हो जायेगा। [तो०] या० प० ४। अ० २। ३। ४। ६। ६६॥

क्या कोई बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बातों में विश्वास कर सकता है? महर्षि दयानन्द ने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा है—'अब देखिए! कैसे बाजीगर का खेल, खिलाड़ी ईश्वर, उसका सेवक मूसा और इन बातों के मानने हारे कैसे हैं? क्या आजकल बाजीगर लोग इससे कम करामात करते हैं? यह ईश्वर क्या, यह तो बड़ा खिलाड़ी है इन बातों को विद्वान् क्यों कर मानेंगे?'[1]

एक दूसरे स्थान पर तो ऐसा गपोड़ा हांका है कि उसके सामने सारा गणित शास्त्र फेल हो गया है। वहां कहां है, 'तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां है, उन्होंने कहा सात और थोड़ी सी छोटी मछलियां। तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी। और उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को लेके धन्य मान के तोड़ा और अपने शिष्यों व लोगों को दिया। सो सब खा के तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उन्होंने उनके सात टोकरे भरे उठाये। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे।'

इसकी समीक्षा में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"अब देखिये! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियां कहां से आ गईं। यदि ईसा में ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था? अपने लिए मिट्टी पानी और पत्थर आदि के मोहनभोग रोटियां क्यों न बना लीं? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसी छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं, वैसे ही ये भी हैं।'[2]

अतः अन्धविश्वास के दोष से बचने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और असत्य को विचार करके काम करना चाहिए। इस विषय में कुछ व्यक्ति यह आपत्ति करते हैं कि व्यावहारिक जीवन में निरी सच्चाई से काम नहीं चल सकता। कई अवसर जीवन में ऐसे आते हैं जबकि मनुष्य असत्य आचरण करने के लिए बाध्य हो जाता है। और असत्याचरण से ही उसका हित प्राप्त होता है। शांतिपर्व में सनत्कुमार के आधार पर नारद जी शुक जी से कहते हैं:—

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम॥

"सच बोलना अच्छा है, परन्तु सत्य से भी अधिक ऐसा बोलना अच्छा है, जिससे सब प्राणियों का हित हो। क्योंकि जिससे सब प्राणियों का अत्यन्त हित होता है, वही हमारे मत में सत्य है।" बाइबिल में पॉल का कथन है—"यदि मेरे असत्य भाषण में प्रभु के सत्य की महिमा और बढ़ती है तो इससे मैं पापी क्योंकर हो सकता हूं"[3] कुछ लोगों का विचार है कि रोगी, विक्षिप्त, शत्रु, चोर और अन्याय से प्रश्न करने वाले के सम्मुख सत्य नहीं बोलना चाहिए।

महर्षि दयानन्द उपर्युक्त विचारधारा से सहमत नहीं हैं। उनके विचार में मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में सत्य के अनुसार आचरण करना चाहिए। प्रश्नोत्तर रूप में अपने विचार को इस प्रकार स्पष्ट किया है:—

प्रश्न—क्यों जी! सर्वथा सत्य से तो कोई व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता। देखो व्यापार में सत्य बात कह दे, तो किसी पदार्थ का विक्रय न हो। हार जीत के व्यवहारों में मिथ्या साक्षी खड़े न करें तो हार हो जाये इत्यादि हेतुओं से सब ठिकानों में सत्यभाषणादि कैसे कर सकते हैं?"

उत्तर—यह बात महामूर्खता की है.....वैसे जो मनुष्य महामूर्ख हैं, वे ऐसा समझते हैं कि सत्य से व्यवहार का नाश और झूठ से ही व्यवहार की सिद्धि होती है। परन्तु जब किसी को कोई एक व्यवहार में झूठ समझ ले, तो उसकी प्रतिष्ठा और विश्वास सब नष्ट होकर उसके सब व्यवहार नष्ट हो जाते हैं और जो सब व्यवहारों में झूठ को छोड़कर सत्य ही कहते हैं, उनको लाभ ही लाभ होते हैं, हानि कभी नहीं। क्योंकि सत्य व्यवहार करने का नाम धर्म और विपरीत का अधर्म है।

---

१. सत्यार्थ प्रकाश, त्रयोदश समुल्लासः।

२. सत्यार्थ-प्रकाश, त्रयोदश समुल्लास।

३. "Far if the truth of God hath more abounded through my lie unto his glory; why yet am I also judged as a sinner?" (Romans 3—7)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्य में मनुष्यपन यही है कि सर्वदा झूठ व्यवहारों को छोड़कर सत्य व्यवहारों को सदा ग्रहण करें।"[1]

सत्याचरण के बिना जगत् व्यापार चलना असम्भव है। किसी राष्ट्र की प्रथम ईकाई परिवार के सदस्य परस्पर व्यवहार में सत्य का पालन न करें तो क्या ऐसा परिवार चल सकता है? असत्य आचरण से एक-दूसरे के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। अविश्वास से पारस्परिक प्रेम का क्षय होता है। प्रेमभाव से द्वेष और विरोध उत्पन्न होते हैं और इनसे घात प्रतिघात पैदा होते हैं। अन्त में जाकर सर्वनाश हो जाता है। इसके विपरीत सत्याचरण से मनुष्य का कल्याण होता है। महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं "ऐसे धार्मिकों को सदा लाभ ही लाभ होता है। और झूठों की दुर्दशा होकर दिवाले ही निकल जाते हैं। इसलिए सब मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि सर्वथा झूठ छोड़कर सत्य ही से सब व्यवहार करें। जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होकर, सदा आनन्द में रहें।"[2] विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं।"[3] ◆

इस नियम के आधार वेद मन्त्र

१. स्वधया परिहिता श्रद्धा पटयूंढ़ा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥
अथर्ववेद का० -१२। यजु० ५।३॥

अर्थ—मनुष्य अपने ही पदार्थों का धारण करें। (श्रद्धया पर्यूंढ़ा) सब मनुष्य सत्य व्यवहार पर अत्यन्त विश्वास को प्राप्त हों। क्योंकि जो सत्य है वही विश्वास का मूल तथा सत्यका आचरण ही उसका फल और स्वरूप है, असत्य कभी नहीं।

२. दृष्टा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः।
यजु० १९।७७।

अर्थ—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि प्रजापति परमेश्वर जो सब जगत् का स्वामी है वह सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को सब प्रकार से सब काल में सत्य में ही प्रीति करनी चाहिए, असत्य में कभी नहीं।

३. देहि मे ददामि ते निमे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे निहारनिहराणि ते स्वाहा ॥
यजु० ३।५०।

भावार्थ—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्य प्रतिज्ञा से ही करने चाहिए। ◆

१. व्यवहारभानु।
२. वही।
३. सत्यार्थप्रकाश, दशमसमुल्लास पृष्ठ १७४।

सभी कृपया अंकित करलें

कि दयानन्द-संस्थान का बड़ा कार्यालय ३३७-ए सूर्यनगर निकट विवेक बिहार P.O. चिकम्बरपुर दिल्ली-३२ में कार्य कर रहा है। साहित्य-शुल्क व सभी प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य व **वेद भाष्य का वितरण वहीं से होता है।**

दिल्ली—गाजियाबाद चुंगी बार्डर से दक्षिण की ओर बड़ी सड़क पर सूर्यनगर स्थित है। ३४०-२२६-३१२-२२५-२१६ २१२ आदि अनेक बसें जाती हैं। विवेक बिहार का अपना रेलवे स्टेशन भी है। कार्यालय रविवार को बन्द रहता है—

प्रबन्धक

जय जय आर्य समाज!

मनुज मात्र का जीवनदाता, आर्य समाज महान् है
सत्य धर्म का रक्षक, त्राता, आर्य समाज महान् है,
शान्ति मन्त्र का प्रबल प्रसारक, आर्य समाज महान् है,
भेद भावना का संहारक, आर्य समाज महान् है!

आर्य समाज सभी से सब जन प्रेम करें सिखलाता है,
आर्य समाज निर्बल की रक्षा उत्तम धर्म बताता है,
आर्य समाज गिरे बिछुड़ों को बढ़कर गले लगाता है,
आर्य समाज सभी का साथी सबको एक बनाता है।

मोक्ष मार्ग तक पहुँचाता है जन जन को प्रिय आर्य समाज,
वेद मन्त्र से राह बताता पावन मधुमय आर्य समाज,
धर्मसार है जीवन बल का गुंजा रहा यह आर्य समाज,
भोगवाद पशुता का पथ है बता रहा यह आर्य समाज,

ईश्वर क्या है कहाँ मिलेगा, कैसा है वह, उलझन भारी,
अन्ध ज्ञान में डूब रही थी, व्याकुल होकर दुनिया सारी,
पत्थर मिट्टी पेड़ पूजकर, भटक रहे थे लाखों प्राणी,
मतवादों के झगड़ों से थी, रुद्ध हुई वीणा कल्याणी,

ज्ञान ज्योति देकर ऐसे में जिसने नव जीवन डाला है,
युग को अमृत देकर भी तो स्वयं पिया विष का प्याला है,
कौन भुला सकता है बोलो, उपकारी के भारी काज,
इसीलिये तो गूंज उठा है, जग में जय जय आर्य समाज!!

—राकेश

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—वचनेश

ग्रामों में धर्म प्रचार : कुछ सुझाव

कवियों ने मुक्त कंठ से गाया है 'ग्रामवासिनी भारत माता।' यह कथन वस्तुतः सर्वांश में ही सत्य है। क्योंकि वास्तविक भारत तो ग्रामों में ही बसता है। भारत के ग्राम ही इस राष्ट्र की प्राण धमनी हैं अतएव भारत के उद्भव का तात्पर्य ही है ग्रामों का उद्भव इस तथ्य के संदर्भ में ही महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों से मानव मात्र को श्रेष्ठ बनाने का उद्घोष लगाने वाले उद्घोषकों को भी इस तथ्य की ओर दृष्टिपात करना होगा। क्योंकि कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के उद्घोष को सब जग में गुंजाने से पूर्व उस पुण्यभूमि में भी सत्य सनातन वैदिक धर्म का वास्तविक अर्थों में पुनरुद्धार किया जाना समय की मांग है जो वैदिक ज्ञान के प्रादुर्भाव की पुनीत स्थली है।

ग्रामों में महर्षि दयानन्द प्रणीत विशुद्ध धार्मिक विचारधारा के प्रचार और प्रसार की दिशा में अब से ५० वर्ष पूर्व के आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं ने हरियाणा और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी अंचलों में अपना ध्यान केन्द्रित किया था। परिणामतः इन्हीं क्षेत्रों में आर्य समाज का संगठन सर्वाधिक सशक्त और प्रभावी है। जब कभी भी आर्यसमाज ने कोई अभियान आरम्भ किया है तो उसमें इन अंचलों के ग्रामवासियों ने भी मनसा वाचा कर्मणा योगदान दिया है। यदि महर्षि के स्वप्न को मूर्त रूप प्रदान किया जाना है तो समाज के कर्णधारों को अपना ध्यान ग्रामों की दिशा में केन्द्रित करना ही होगा। ग्रामों में कार्य की सुनियोजित योजना बनानी होगी।

एक तथ्य और भी ऐसा है कि जिसे हम अपनी दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते वह यह है कि पाश्चात्य जीवन पद्धति और चिन्तन की चमक दमक ने नगरों की युवा पीढ़ी में अपना सब कुछ हेय और परकीयों (विदेशियों) का सभी कुछ श्रेष्ठ की विचारधारा को भले ही पनपा दिया हो। भारत के ग्रामवासी आज भी धार्मिक श्रद्धा को हृदय में बसाए हैं। यह अलग बात है कि दासता की इस लम्बी अवधि में वे धर्म के वास्तविक स्वरूप एवम् मर्म से अनभिज्ञ हो गए हैं। जिसके कारण धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के पाखंड, कुरीतियां और प्रपंच भी उन्हें भ्रमित कर रहे हैं।

वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए उत्सुक कार्यकर्त्ताओं को ग्रामों में प्रचार की दृष्टि से एक पृथक् कार्य पद्धति का निर्धारण करना होगा, जो ग्रामों की स्थितियों के अनुकूल हो। इस दृष्टि से कतिपय सुझाव यहां प्रस्तुत हैं:—

ग्रामों में लोग प्रायः सायंकाल दिनभर के कार्यों से निवृत्त होने के उपरांत ग्राम की चौपालों में एकत्रित होते हैं। अतः यह उनमें धर्म प्रचार की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त स्थल होता है। अतएव रात्रि में इन चौपालों पर एकत्रित ग्रामवासियों में कथा आदि का आयोजन किया जा सकता है। सरल भाषा में उपनिषद् आदि की कथाएं उनमें धर्म के प्रति सही दृष्टि कोण को पनपाने में सहायक सिद्ध होंगी।

कई ग्रामों में प्रायः सप्ताह में एक बार बाजार अथवा पैंठों का आयोजन होता है। इस अवसर पर कई आस पास के ग्रामों के लोग सैकड़ों की संख्या में एकत्रित होते हैं। इन बाजारों या पैंठों का उपयोग वैदिक धर्म के प्रचार के लिए किया जा सकता है। ग्रामीणों को आकृष्ट करने के लिए अच्छे कंठ वाले गायकों व भजनीकों की सेवाएं ली जानी आवश्यक है। भजन व गायक भी ऐसे होने चाहिए कि जो ग्रामीणों की सामान्य बोलचाल की शब्दावलि से युक्त हों। इन भजनों के माध्यम से ग्रामीण जनता की अभिरुचि में भी बदलाव लाया जा सकता है।

नगरों के कार्यकर्त्ताओं को अवकाश वाले दिनों में आस-पास के ग्रामों में जत्थों के रूप में जाकर धर्म प्रचार का अभियान चलाना चाहिए। ऐसे जत्थों में जाने वाले कार्यकर्त्ताओं को अपनी वेशभूषा में सादगी पर भी ध्यान रखना होगा।

ग्रामों में प्रचार के लिए आर्यसमाज के नियमों व सिद्धान्तों से संबंधित ऐसे छोटे-छोटे ट्रैक्ट तैयार करके वितरित किए जाने चाहिए कि जिनमें कथा कहानियों के माध्यम से विवेचना की गई हो।

शिक्षा प्रचार भी ग्रामों की विशेष मांग है। अतएव यथासंभव यह प्रयास किया जाना चाहिये कि ग्रामों में दयानन्द बाल विद्यालय खोले जायें। जिनमें बालकों को सामान्य अक्षर ज्ञान के अतिरिक्त संध्या हवन एवम् वेद-मंत्रों से भी परिचित कराया जाये।

विशेष पर्वों व तीज त्यौहारों का उपयोग भी ग्रामों में धर्म प्रचार के लिये किया जा सकता है। ऐसे अवसरों पर कथा वार्ताओं व भजनों का आयोजन कर ग्रामीणों में सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रति रुचि को जगाया जा सकता है। इस कार्य में आर्यसमाज के संन्यासी वर्ग द्वारा सराहनीय भूमिका निभाई जा सकती है। धर्म के सिद्धान्तों की यदि सरल व सरस भाषा में ग्रामीणों को जानकारी दें तो यह पद्धति ग्रामीणों में प्रचार व प्रसार का अधिक सफल एवम् प्रभावी माध्यम बन सकती है। ऐसे अवसर पर ग्रामीणों को समाज में व्याप्त कुरीतियों व कुप्रथाओं से अवगत कराया जा सकता है।

कुछ ग्रामों में वर्ष में कई बार बड़े-बड़े मेले आदि भी लगते हैं। इन मेलों में यदि धर्म प्रचार शिविर आयोजित किए जाएँ तो वे भी ग्रामों में प्रचार कार्य को बढ़ावा देने के सफल माध्यम बन सकते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व तक आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता ग्रामों में मैजिक लैन्टर्न की सहायता से महर्षि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी धारणाओं व अन्य सिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे। किन्तु अब यह क्रम प्रायः बंद सा ही हो गया है। किन्तु ग्रामों में धर्म प्रचार की दृष्टि से इस प्रकार के साधनों की महत्ता आज भी कम नहीं हुई है। अतः इस दृष्टि से अच्छे चित्र आदि बनवा कर इस सिलसिले को पुनः प्रारम्भ किया जाना भी श्रेयस्कर होगा।

(शेष पृष्ठ १८ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—वीरेन्द्र

गुणों का विकास कैसे हो ?

गुणी जन ही आदर प्राप्त करते हैं और दुर्गणी अथवा गुणविहीन समाज द्वारा उपेक्षित कर दिए जाते हैं। अतएव उन्नति के आकांक्षी प्रत्येक व्यक्ति की ही इच्छा होती है कि वह गुण संपन्न हो। यों तो अनेक गुण प्रभु प्रदत्त होते हैं, जैसे कि कोई बालक प्रारम्भ से ही नितांत मेधावी होता है और अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल पर वह अपने समवयस्कों की तुलना में किसी को भी अपनी ओर अधिक सरलता सहित आकृष्ट कर सकता है। किन्तु जहां जन्मजात गुण प्रभु की देन है, वहां व्यक्ति परिश्रम और प्रयत्नों से भी अनेक गुणों की पूंजी का सहेजन में सफलता प्राप्त कर सकता है। कहा भी गया है कि:—

करत करत अभ्यास के,
जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते,
सिल पर परत निशान।

अतएव परिश्रम और प्रयत्न पूर्वक गुण प्राप्ति से भी इंकार नहीं किया जा सकता। व्यक्ति अवगुणों को त्याग कर किस भांति गुणों का विकास कर सकता है, इस सम्बन्ध में कतिपय सूत्र प्रस्तुत है।

सर्वप्रथम गुण विकास के लिए यह आवश्यक है कि अकारण भयभीत न हुआ जाए और भय प्रतीत होता हो तो परमात्मा का नाम स्मरण किया जाए। क्योंकि प्रभु के पावन नाम के समक्ष कोई भी भय नहीं टिक पाता। परमात्मा ही अभय का प्रदाता है।

मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है और ये भूल ही व्यक्ति को गुणविहीन की भी संज्ञा दिला देती है। अतएव यह आवश्यक है कि हम अपने द्वारा होने वाली भूलों व गलतियों को प्रतिदिन सुधारने की दिशा में प्रयत्नशील हों। इसका एक उपाय यह है कि बीते कल की गलतियां आज न हों और आज हमसे जो भूल हो गई है उसकी पुनरावृत्ति न होने देने के लिए हम सचेष्ट रहें।

प्रत्येक विचार के सम्बन्ध में गहन चिन्तन मनन भी गुण विकास का एक स्वर्णिमसूत्र है। जो विचार हमारे मन में सत्य विचार के रूप में अंकित हो जाएं उसे हम अपने व्यवहार में भी उतार तो हमारा जीवन गुण संपन्नता की राह पर बढ़ सकता है।

अपने चारित्रिक विकास की दृष्टि से हमें एक और बात भी स्मरण रखनी चाहिए। वह यह है कि हम यथाशक्ति आवश्यकता पड़ने पर दूसरों की सहायता करें। हमें इस तथ्य की कदापि उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि अनेक व्यक्तियों से हमें भी जीवन में सहायता प्राप्त हुई है और होगी।

प्रतिदिन ही कुछ समय नियमित रूप से अध्ययन करना भी हमारी जीवन धारा को सुखद मोड़ दे सकता है। क्योंकि अच्छे साहित्य के अध्ययन के परिणामस्वरूप हमारे मन पर सस्कार व विचार अवश्य ही अंकित होंगे जो हमारे लिए प्रेरक बनेंगे।

गुरुजनों अभिभावकों एवम् वरिष्ठ जनों के प्रति सेवा की भावना भी हमें सद्यार्ग पर प्रशस्त करेगी। क्योंकि पूज्यजनों का आशीर्वाद भी व्यक्ति के जीवन को सद्मार्ग पर बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा।

सत्य भाषण और सच्चाई का वर्ताव भी हमारे जीवन के पथ को आलोकित करने वाला एक महान सूत्र है। मिथ्या भाषण से व्यक्ति अपने क्षणिक स्वार्थों की पूर्ति तो भले ही कर ले किन्तु जब तथ्य दूसरे के समक्ष आता है तो असत्य भाषी व्यक्ति उसकी दृष्टि से गिर जाता है। किन्तु यदि हम सत्य भाषण व व्यवहार की पूंजी को अपने जीवन में संजोएं तो समाज में हमारे प्रति आदर बुद्धि का जागृत होना स्वाभाविक है।

क्रोध आना वस्तुत: दुर्बलता का लक्षण ही है और इसके वशीभूत व्यक्ति जो आचरण करता है उसका परिणाम कदापि सुखद नहीं होता अतएव यह आवश्यक है कि हम क्रोध कभी न आने दें। इसे यथाशक्य स्वयं से दूर ही रखें।

प्रत्येक बात में केवल अपना ही लाभ देखना भी एक अच्छी प्रक्रिया नहीं और इस प्रकार की प्रवृत्ति निपट स्वार्थ की जननी है। हमें सदैव इस तथ्य को दृष्टिगत रखना चाहिए कि संसार हमारे भोग के लिए नहीं है अपितु हम संसार की सेवा के लिए हैं। यदि हमारे हृदय में यह भावना सही रूप से उपज जाएगी तो हमसे कभी भी किसी का अनिष्ट नहीं होगा। सामान्यत: हम दूसरों के दोष ही खोजते हैं। किन्तु यदि हम जीवन को गुण संपन्न बनाना चाहते हैं तो हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हम प्रत्येक के गुणों को देखकर उससे गुण ग्रहण करें। इसी प्रवृत्ति का परिपालन हमारे जीवन से अवगुणों को दूर कर हमें गुणवान बनाएगा।

पर दुख: कातरता भी गुणों के विकास के लिए आवश्यक है इसी दृष्टि से निम्नलिखित पंक्तियां हमारे लिए पथ प्रदर्शक सिद्ध हो सकती हैं:—

परहित सरस धर्म नहीं भाई।
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।।

उतावली, उद्धतपन भी चारित्रिक दुर्बलताओं के ही द्योतक हैं अतएव इन प्रवृत्तियों से हमें अपने जीवन को मुक्त बनाना चाहिए। क्योंकि उतावली में प्राय: व्यक्ति

(शेष पृष्ठ १७ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोहेनूर : जो धर्मराज के राजमुकुट की शोभा था

श्यश्यश्यामला भारत भूमि की समृद्धि एवम वैभव का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में पर्याप्त हुआ है। भारतीय ग्रन्थों में इस आर्यावर्त वैभव की द्योतक अनेक मणियों का भी उल्लेख है। इन्हीं मणियों को आज सामान्यजन हीरा कहकर सम्बोधित करते हैं। भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अनेक मणियों की चर्चा के साथ ही साथ यह उल्लेख भी मिलता है कि भारतीय मणियाँ (हीरा) विदेशों में भी नितान्त लोकप्रिय थीं और प्राचीन काल में इस देश की उर्वरा धरा से इन हीरों का भी विदेशों को निर्यात किया जाता था। यदि यह भी कहा जाये कि हीरों के इतिहास का आरम्भ भारत से ही हुआ है और इस रत्नगर्भा धरती ने विश्व को अमूल्य हीरे प्रदान किए हैं तो अतिश्योक्ति न होगी। इन्हीं मणियों (हीरों) में से एक है इतिहास में विख्यात कोहेनूर।

इसका सर्वप्रथम महाभारत के भीष्म पर्व में उल्लेख मिलता है। उन दिनों में कश्मीर के शासक थे राजा भूरिश्रवा। ऐसा उल्लेख है कि युद्ध करते समय वह अपनी भुजा से इसे बाँध लेते थे। युद्ध में भूरिश्रवा अर्जुन के हाथों मारा गया। उससे प्राप्त यह कोहेनूर हीरा वीरवर अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर को समर्पित कर दिया। महाराज युधिष्ठिर के उपरान्त यह कोहेनूर महाराज परीक्षित के पास आया और तदुपरान्त महाराज जनमेजय इसे पाकर गौरवान्वित हुए। इस प्रकार अनेक शताब्दियों तक यह हीरा इन्द्रप्रस्थ के महाराजाओं के वैभव का प्रतीक बना रहा। तदुपरान्त इतिहास के पृष्ठों में यह साक्षी प्राप्य है कि कोहेनूर सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्यसत्ता को गौरवान्वित करता रहा। मौर्यवंश के अन्तिम शासक सम्राट वृहद्रथ की हत्या करने के उपरान्त पुष्यमित्र ने सत्ता ग्रहण की थी। उनके बाद यही रत्न बिम्बिसार, अशोक एवम् उनके उत्तराधिकारी शासकों के लिए गर्व की वस्तु बना रहा। शुंगवंश के शासकों के उपरान्त कनिष्क इसका अधिकारी बना तो कुषाण वंश के पतन के उपरान्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकोष को भी जगमगाता रहा।

सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उपरान्त कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त सरीखे प्रतापी सम्राटों की छत्रछाया इसे प्राप्त होती रही। तदुपरान्त गुप्तवंश के परायण के उपरान्त महाराज हर्षवर्धन के कोषागार में इसकी कान्ति द्युतिमान रही। किन्तु हर्षवर्धन के उपरान्त जब उनका साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा तो हूणों की अपावन पग धूल को सिन्धु तट से हटाने वाले प्रतापी यशोधर्मा इसके स्वामी बने और फिर यह अनेक शताब्दियों तक मालव सम्राटों के वैभव का प्रतीक बना। किन्तु शनैः शनैः भव्य भारत भूमि पर दुर्दिनों की काली छाया बढ़ने लगी और अन्ततः भारतीय नरेशों की पारस्परिक कलह का आना। भारत की रत्नगर्भा भूमि को हड़पने के लिए लालायित विदेशी शक्तियों को इस स्थिति ने अनुकूल वायुमंडल प्रदान कर दिया और फिर अरबों तुर्कों, तातारों, मुगल, मंगोल सभी ने इस देवघरा को लीलने के लिए उपक्रम किया। ११९३ ई० में दिल्ली के महाराज पृथ्वीराज चौहान इसी आपसी कलह की बलिवेदी पर बलिदान हो गए और मुहम्मद गौरी ने दिल्ली के राज्य सिंहासन पर अधिकार कर लिया किन्तु कोहेनूर उसके हाथ न पड़ पाया और मालव नरेश रामदेव इसे संभाले रहे किन्तु उनसे इसे अलाउद्दीन खिलजी ने हथिया लिया। १३१६ में अलाउद्दीन के मरते ही यह तुगलकों के हाथों में आ गया और फिर क्रमशः सैयद व लोदी सुलतानों के राजमुकुटों की शोभा बना।

सन् १५२६ में इब्राहीम लोदी को परास्त कर मुगलों से कोहेनूर १७१९ में मुहम्मद शाह रंगीले के हाथ पड़ा। किन्तु सुरा व सुन्दरी के प्रति आसक्त यह रंगीला इस रत्न को न संभाल सका और इस रत्न की प्रशंसा से लालायित ईरान सम्राट नादिरशाह ने इसे हड़पने की योजना को हृदय में संजोये १७३९ में करनाल के रणांगण में मुगल सेना को परास्त किया और बाद में २२ मार्च १७३९ को दिल्ली में भारी नरसंहार हुआ। नादिरशाह ने दिल्ली को जी भर कर लूटा किन्तु कोहेनूर को पाने की उसकी तमन्ना पूर्ण न हो पाई। क्योंकि रंगीला ने उसे अपनी पगड़ी में छिपाकर रखा और अन्ततः पगड़ी में छिपा यह हीरा नादिरशाह के हाथ आ गया।

१६ मई, १७३९ को नादिरशाह ईरान के लिए वापस लौटा। ईरान पहुँचकर उसने दिल्ली की लूट से अपना कोष भर लिया। किन्तु उसे अपने भतीजे अलीकुली खां के हाथों ही यमलोक जाना पड़ा। फिर वही लूट का बाजार गर्म हो उठा और कोहेनूर अहमदशाह अब्दाली के हाथ चढ़ गया। मुगल शासक बाबर दिल्ली आया और उसने प्रचुर सम्पदा तो हथियाई किन्तु कोहेनूर फिर उसके हाथों से दूर ही रहा। क्योंकि इब्राहीम लोदी दिल्ली से आगरा पलायन करते हुए कोहेनूर को भी अपने साथ ले गया। किन्तु जब बाबर का पुत्र हुमायूँ आगरा पर चढ़ दौड़ा तो लोदी की बेगमों ने अपने प्राण बचाने के लिए हुमायूँ को यह हीरा अर्पित कर दिया और उसने इसे अपने पिता बाबर को सौंपा। बाद में जब बाबर की मृत्यु के बाद हुमायूँ के भाग्य ने पलटा खाया तो वह ईरान भागने पर बाध्य हो गया और कोहेनूर को भी अपने साथ ले गया। १५५५ में पूर्ण सिद्धता के बाद हुमायूँ ने सिकन्दर सूरी को परास्त कर पुनः दिल्ली व आगरा पर अपनी विजय पताका फहरा दी। किन्तु हुमायूं यहाँ सुख वभव अधिक दिन तक न भोग पाया और २४ जनवरी, १५५६ को चिर विदा ले गया। तदुपरान्त अकबर ने दिल्ली की राज्य सत्ता संभाली और १६०५ ई० तक अर्थात् ५० वर्ष शासन किया और उसके बाद भी २५० वर्ष तक मुगल भारत के शासक बने रहे। □

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विज्ञान वार्ता

अमरीका की एक फर्म ने एक ऐसा भारमापक यन्त्र या तराजू (आटो वे सिस्टम) विकसित किया है जो कन्वेयर बेल्ट (मालवाही पट्टी) पर घूम रही वस्तुओं का भार स्वतः माप लेने मे समर्थ है। निर्माता फर्म का कहना है कि यह यन्त्र कन्वेयर बेल्ट पर घूमती वस्तु का भार मार कर स्वतः अंकित कर देता है और ऐसा करने में पट्टी की गति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। तराजू की गति और वजन के संकेतों के समन्वय द्वारा ढोयी जा रही वस्तु का सही माप प्राप्त हो जाता है। यह स्वतः भार मापक विद्युदाणविक यंत्र १५० अंश तक के तापमान के अंतर्गत क्रियाशील होता है। यह यन्त्र शिकागो, इलिनाय, की फर्म, इन्जीनिरिंग इक्विपमेण्ट कम्पनी, द्वारा निर्मित हो रहा है।

धूप से भवनों की रक्षाथ विशेष जाली

अमरीका में फोर्टवर्थ, टैक्सास, की एक फर्म मिटेक स्पेशल्टी कम्पनी, एक ऐसी जाली का निर्माण कर रही है, जो घरों, कार्यालयों, कारखाना व मोटर-गाड़ियों में धूप की रोकथाम में उपयोगी सिद्ध हो रही है। इसे फ्रेम और रोलर में स्थापित किया जा सकता है अथवा सीधे कांच पर चढ़ाया जा सकता है। ऐसा करने पर यह धूप को पूरी तरह नियन्त्रित करती है और विकिरण, चमक और कीड़े-मकोड़ों से भवन को बचाती है। निर्माताओं का कथन है कि इसके प्रयोग से घर में प्रकाश की तनिक भी कमी नहीं पड़ती।

इसका नाम 'रिपलेक्टो-स्क्रीन' है। यह धातुमिश्रित पोलिस्टर की पतली जाली है। निर्माताओं का कथन है कि सामान्य स्थितियों में इसका क्षरण नहीं होता। इसमें न तो शिकन पड़ती है और न मोर्चा लगता है। यह ७३ प्रतिशत हानिकारक धूप को रोकने में समर्थ है।

डाक में बम या अस्त्र का पता लगाने वाली मशीन

लॉस एंजेलस, कैलिफोर्निया, की एक फर्म, टोर लैबोरेटरीज, इन्क० ने 'मेल-स्केन' नामक एक छोटी एक्स रे मशीन का निर्माण किया है, जो मुहरबन्द लिफाफों और पैकेटों के भीतर की वस्तुओं की जांच करके यह पता लगा लेती है कि उनमें कोई हथियार या बम तो नहीं। निर्माताओं का कथन है कि विकिरण सुरक्षा के मामले में यह अमरीका के नेशनल ब्यूरो ऑव स्टैण्डर्ड्स द्वारा निर्धारित प्रतिमान के अनुरूप है। डाकखानों, जेलों, दूतावासों तथा व्यापारिक और औद्योगिक कार्यालयों में यह मशीन उपयोगी सिद्ध होगी।

'मेलस्केन' १५,७५ इंच लम्बे, १०.५ इंच चौड़े और ६ इंच ऊँचे आकार के पार्सलों या पत्रों की गड्डियों की जांच भली-भांति करने में समर्थ है। यह .००६ इंच जितने छोटे आकार के तांबे के तार या अतीव हल्की प्लास्टिक तक का पता लगा सकती है।

प्रदूषण रक्षक नल

इलिनाय (अमरीका) की एक फर्म, मार्क कण्ट्रोल्स कारपोरेशन, ने पानी का एक ऐसा नल विकसित किया है, जिसका प्रयोग सार्वजनिक पार्कों, शिविर-प्रांगणों, पशुपालन-क्षेत्रों, डेयरी फार्मों और मनोरंजन क्षेत्रों में किया जा सकता है। इसकी विशेषता यह है कि यह प्रदूषण के विरुद्ध किसी भी अन्य प्रकार के नल की अपेक्षा अधिक सुरक्षा प्रदान करता है। यह उस समय भी पानी को दूषित नहीं होने देता, जब भारी वर्षा के कारण भूमिगत जल का स्तर ऊँचा हो जाता है।

(पृष्ठ १५ का शेष)

इसके अतिरिक्त भी अन्य ऐसे ही कार्यक्रमों का आयोजन ग्रामों में धर्म प्रचारार्थ किया जा सकता है।

यदि महर्षि दयानन्द की विचारधारा के प्रचार व प्रसार के इच्छुक सज्जनों ने ग्रामों में धर्म प्रचार का अभियान सुनियोजित ढंग से चलाया तो महर्षि के स्वप्न को साकार बनाने की दिशा में वे ठोस योगदान दे सकते हैं।

(पृष्ठ १६ का शेष)

अपने काम को स्वयं ही बिगाड़ लेता है और फिर कई बार तो उसे अपनी इस भूल के परिणामस्वरूप दूसरों के समक्ष उपहास का पात्र भी बनना पड़ता है।

हम सत्य का आग्रह जितनी निर्भीकता से करें उतना ही हमें कोई भी बुरा कार्य करने में लज्जा का अनुभव होना चाहिए। यह भावना ही हमें कुपथगामी होने से रोक कर सुपथगामी बनाएगी। हमें मर्यादाओं का भी सदैव स्मरण रखना चाहिए और किसी भी स्थिति में उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

क्षमा का गुण भी चरित्र के लिए महान् पूंजी है। हमें अपना यह स्वभाव बनाना चाहिए कि यदि कोई कमजोर व्यक्ति गलती भी करता है तो हम उसे क्षमा कर देने की उदारता का प्रदर्शन करें।

स्वयं ऊँचा उठने के लिए जो व्यक्ति दूसरे को गिराने का उपक्रम करता है वह कदापि बड़ा नहीं बन सकता। किसी से मत्सर की भावना से हमें दूर रहना चाहिए। स्वयं को ही बड़ा मानने की प्रवृत्ति से हम उत्थान के मार्ग पर कदापि नहीं चल सकते दूसरे स्थान पर प्रत्येक से कुछ न कुछ ग्रहण करने की उदार बुद्धि ही हमारे जीवन को सद्मार्ग पर ले जाने में सफलता प्रदान करा सकती है।

किसी के अनावश्यक दबाव के समक्ष न दबना या झुकना भी व्यक्ति के जीवन को गुणसम्पन्न बनाने वाला महान सूत्र है। इसी भाँति कष्ट और संकट की घड़ियों में हम जितने अधिक धैर्य का प्रदर्शन करेंगे और व्याकुलता से विरत रहेंगे उतना ही हमारे जीवन को प्रकाश की एक नवीन किरण मिलेगी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का १२सूत्री कार्यक्रम

१. प्रत्येक आर्यसमाज को भविष्य में अपना कार्यक्रम इस आधार पर निर्धारित करना चाहिए कि उसका अधिक से अधिक जनता के सभी वर्गों से सम्पर्क हो सकें और वह जो भी कार्यक्रम बनाए वह केवल जनकल्याणकारी और जन-सेवा की भावना से ही बनाएं।

२. सार्वदेशिक सभा के निर्देशानुसार समस्त आर्यसमाज अपने-अपने संगठन के लिये आर्यकुमार सभाएँ, आर्य वीरदल एवं आर्य वीरांगना दलों का आयोजन करें।

३. कोई भी आर्यसमाजी जिसके विरुद्ध किसी भी भ्रष्टाचार व चरित्र हीनता का आरोप हो वह किसी भी आर्यसमाज का अधिकारी न बन सके।

४. महिलाओं को प्रत्येक आर्यसमाज एवं प्रतिनिधि सभाओं के संगठन की प्रत्येक कार्यकारिणी समिति में अनिवार्य रूप से स्थान दिया जाये।

५. कोई भी आर्य समाजी किसी भी ऐसे विवाह में सम्मिलित न हो जिसमें अनियंत्रित दहेज लिया जाय वा दिया जाय। जो आर्यसमाजी इसका उल्लंघन करेगा वह किसी भी आर्यसमाज का सदस्य न बन सकेगा।

६. जहां तक सम्भव हो विवाह आर्य समाज मन्दिरों में ही कराये जावें और आर्य समाज के अधिकारी प्रत्येक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करें।

७, किसी भी बरात में ५० से अधिक बराती न हों और सजावट, आतिशबाजी, रोशनी आदि पर व्यर्थ धन खर्च न किया जाय।

८. भंगड़ा, नांच व इसी प्रकार के प्रदर्शन आदि में कोई आर्यसमाजी सम्मिलित न हो, जो हो उसे आर्यसमाज से निष्कासित किया जाये।

९. जो आर्य समाजी अपने नाम के साथ जाति-सूचक चिह्न का प्रयोग करते हैं वह बन्द कर दें, उनके स्थान पर आर्य शब्द लगावें।

१०. प्रत्येक आर्य परिवार अपने बच्चों के सभी संस्कार अनिवार्य रूप से करावे। तथा जो व्यक्ति नियम पूर्वक संध्या हवन न करता हो उसे किसी पद पर न रखा जाये।

११. प्रत्येक आर्यसमाज अपने उत्सव एवं विशेष अवसरों पर हरिजन भाइयों को विशेष रूप से बुलाकर सहभोज का आयोजन करें। उन्हें अपने आर्यसमाज के सदस्य बनाकर समान स्तर पर लाने का अनिवार्यरूप से प्रयास करें जिससे सामाजिक विषमता का मूल नाश किया जा सके।

१२. आर्य समाज अन्तरजातीय विवाह का समर्थक रहा है। इसलिए प्रत्येक आर्य समाज को अन्तरजातीय विवाह कराने का आन्दोलन करना चाहिए। □

दयानन्द संस्थान द्वारा प्रस्तुत आर्यसमाज का

दस सूत्री कार्यक्रम

१. सभी आर्य सभासद अपने-अपने परिवारों को आर्य बनाने के लिए जीवन में रचनात्मक परिवर्तन करें।

(क) सपरिवार यज्ञ व संध्या अनिवार्य रूप से करें। जो दोनों समय न कर सकें वे एक समय तो अवश्य ही करें।

(ख) प्रतिदिन सभी मिलकर एक निश्चित समय पर किसी भी ऋषि ग्रन्थ का स्वाध्याय करें।

(ग) सपरिवार निकट के आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में अवश्य जायें।

२. (क) सभी आर्यसमाजें वर्ष में कम से कम अपने आस-पास के ग्रामों में प्रचार का प्रबन्ध करें।

(ख) अपनी आय का पांचवां भाग साहित्य वितरण में व्यय करें।

(ग) सभी सभासदों के सुख दुःख में सभी सम्मिलित होने का स्वभाव बनायें।

(घ) आर्यसमाज मन्दिरों को स्वच्छ और सुन्दर आकर्षक ढंग से रखें और उनमें पुरोहित अवश्य हों।

(ङ) सभी धर्म तीर्थों में धर्म प्रचार केन्द्र स्थापित किये जाएँ।

३. आर्यसमाज की वेदी से राजनैतिक व्याख्यान न कराये जाएँ।

४. जहाँ भी साधन हों वहाँ 'दयानन्द बाल सदन' स्थापित कराये जाएँ।

५. आर्यसमाज के उत्सवों पर संन्यासियों, विद्वानों, उपदेशकों का सम्मान किया जाये।

६. भाषणों के विषय पूर्व से ही विद्वानों को भेज दिए जाएँ। निश्चित विषयों पर ही भाषण कराये जाय।

७. वेद अध्यात्म सिद्धान्त और महर्षि के दृष्टिकोण से सभी को परिचित कराया जाये।

८. आपस की फूट, दलबन्दी और पार्टीबाजी आर्यसमाज की प्रगति की सबसे बड़ी बाधा है। अतः इसे किसी भी स्थिति में न पनपने दिया जाये। यदि कहीं विवाद हों भी तो उसके सम्बन्ध में प्रान्तीय सभा का निर्णय सभी पक्ष हृदय से स्वीकार करें।

९. आर्यसमाज के सभासद अपने-अपने कार्य में ईमानदार रहें। दहेज व सामाजिक कुप्रथाओं से बचें और किसी भी कार्य को करते हुए यह न भूलें कि उनके व्यवहार से आर्यसमाज का मूल्यांकन किया जाता है।

१०. पाखण्डों, अन्धविश्वासों, नकली भगवानों और गुरुडम के विरुद्ध सर्वत्र प्रभावशाली पग उठाये जायें।

दोनों कार्यक्रम जनता के समक्ष प्रस्तुत हैं। जो भी ठीक समझें वह आचरण में लाएँ— सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिल के दौरे क्यों पड़ते हैं ?

पाश्चात्य जगत् के एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा० डब्ल्यू० ए० आर० थामसन ने इस लेख में स्पष्ट किया है कि भोजन का हृदयाघात के साथ गहन संबंध है। यह रोग उन लोगों को ही अधिक होता है जो शाक सब्जियों के स्थान पर मांसाहार करते है। इस रोग का दूसरा बड़ा कारण है यौन प्रवृत्ति इस का भी इससे गहन संबंध है।

—सम्पादक

विश्व स्वास्थ्य संघ के सहयोग से कार्य करते हुए डा० लार्स और उनके सहयोगियों साहलग्रेंस अस्पताल गोरवर्ग के निरोधात्मक हृदयरोग विभाग के सहयोगियों ने इस संबंध में खोज करने की चेष्टा की है कि पश्चिमी देशों में हृदयाघात का प्रकोप क्यों बढ़ने लगा है।

इस संबंध में गोरवर्ग के ४,५०,००० नागरिकों में से ३०,००० का अध्ययन किया जा रहा है। अधिकांश को अपने संबंध में यह पता भी नहीं कि उनका अध्ययन हो रहा है। इस बात की सतर्कतापूर्वक जांच की जा रही है कि उनकी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रचना कैसी है और कार्यालय पर अथवा घर में उनका वातावरण कैसा है—जिससे कुछ को दिल का दौरा पड़ जाता है और कुछ बच जाते हैं।

जो बच जाता है, उन्हें कंट्रोल के तौर पर प्रयुक्त किया जाता है जो किसी शोध का आवश्यक अंग है। इन कंट्रोलों को भी विदित नहीं होता कि उनका अध्ययन किस उद्देश्य से किया जा रहा है।

हृदयाघात के बाद भी जो जीवित बच जाते हैं, उन्हें डा० लार्स के विभाग में भेजा जाता है जहां स्वयं डाक्टर लार्स एवम् उनके सहयोगी उन्हें व्यायाम तथा खुराक के संबंध में परामर्श देते हैं।

गोरवर्ग जांच का एक दूसरा पक्ष भी है, जिससे यह विदित होता है कि दिल के दौरे क्यों पड़ते हैं और उनसे बचाव की विधि क्या है ? वस्तुतः यह एक उलझनपूर्ण चित्र है, जिसके सम्बन्ध में हम अत्यधिक आशंकित हो रहे हैं।

कारण

इस रोग के अनेक कारण हैं, जिनमें हमारा रहन सहन, यौनाचार, वातावरण, खुराक, तथा क्या हम धूम्रपान व मद्यपान करते हैं, कितना हम व्यायाम करते हैं और हम कितनी चिन्ता या सोच विचार करते हैं, ये सभी बातें सम्मिलित हैं।

इनमें से दो बातें ऐसी हैं, जिनके सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कर सकते। ये हैं हमारा पारिवारिक वातावरण व माता पिता। पुरुष महिलाओं की अपेक्षा हृदय रोग से अधिक ग्रस्त होते हैं। इसका कारण है हमारा हार्मोन मेकअप किन्तु इस सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं किया जा सकता।

धूम्रपान

परन्तु कतिपय बातें ऐसी हैं कि जिन पर हम बहुत कुछ कर सकते हैं। इनमें से एक है धूम्रपान। यह स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं, जिस किसी व्यक्ति को एक बार दिल का दौरा पड़ चुका है, यदि वह स्वस्थ होने के पश्चात् पुनः धूम्रपान करता है तो उसे पुनः दिल का दौरा पड़ने के १० गुणा अधिक अवसर होते हैं। नितांत महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस धूम्रपान करने वाले को हृदयाघात होता है और वह बच जाता है तथा पुनः सिगरेट आदि नहीं पीता तो उसे पुनः हृदय आघात होने की संभावनायें घट जाती हैं। वास्तव में अधिक धूम्रपान करने से हृदय आघात की संभावनाएं भी बढ़ जाती हैं।

धूम्रपान के इस पक्ष पर अभी तक विचार कम ही हुआ है। सारा जोर धूम्रपान से कैंसर तथा फेफड़ों के रोगों पर ही होता रहा है। सूडानी अनुसंधान में हृदय गति से इसका सम्बन्ध निश्चय ही उल्लेखनीय है।

मांसाहार

दूसरी महत्वपूर्ण खोज है खुराक और हृदयाघात का पारस्परिक संबंध। सर्वप्रथम इस बात ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया कि फिनलैण्ड में हृदयाघात की घटनाएं सर्वाधिक क्यों होती हैं ? इसका कारण यह विदित हुआ कि वहां के निवासी संसार में सर्वाधिक पशुमांस भक्षण करते हैं।

अब यह बात स्पष्ट होती जा रही है जो लोग मांसाहार नहीं करते वे हृदय आघात से बहुत ही कम पीड़ित होते हैं और जो लोग शाक सब्जियां खाते हैं उन्हें दिल का दौरा बहुत ही कम पड़ता है।

उपरोक्त निष्कर्षों से यह परिणाम स्वतः स्पष्ट है, धूम्रपान, मांसाहार एवम् असंयमित जीवन जहां हृदयाघात की संभावनाओं को प्रबल बनाते हैं, वहां धूम्रपान व मांसाहार से सर्वथा मुक्ति एवम् सादा जीवन उच्च विचार की वैदिक मान्यता इस महाव्याधि से बचने का एक सफल तथा प्रभावी साधन है।

◆

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'कहानी

प्रत्यावर्तन

—रामेश्वर

पक्षियों का अछूता कलरव उसके उभार के साथ पहाड़ियों में दुबका हुआ सूर्य का नारंगी गोला ऊपर उभर आया । पत्थरों से लुढ़कते निर्मल नीर पर जैसे किसी नवयौवना ने सिन्दूर उलट दिया हो। वेदानन्द ने अपने विशाल नेत्र खोलकर ऊषा का मन ही मन अभिनन्दन किया। 'ओम्' का गंभीर घोष था उसके अधरों पर प्राणायाम के बाद मन न जाने कैसा हो गया । मानों किसी उद्दाम लालसा को खूंटे से बांध दिया । पत्थरों के लुढ़कने से पानी में छपाक् की ध्वनियां उभरती-विलीन हो जातीं । सूरज चढ़ आया। वेदानन्द खड़ा हो गया। पास में खड़े गुरु सुधानन्द को देखकर उसके नेत्र चमक उठ। झुककर उनके चरण छुए और बहुत देर तक उनके प्रदीप्त मुख मण्डल को देखता रहा ।

'वत्स वेदानन्द ! मेरी कल की बात के बारे में क्या विचार किया है ?' सुधानन्द ने निश्चल दृष्टि उसके मुख पर गड़ाकर पूछा । 'गुरुदेव ! आप फिर से मुझे नरक में ढकेल देना चाहते हैं। इस संसार की विषमता में मेरा दम घुटने लगा था। असत्य और अन्याय के चरणों में नत होना मेरे बस का काम नहीं।'

'बेटा !' सुधानन्द ने दीर्घ श्वास छोड़ी—'मैं अस्सी वर्ष की अवस्था पार कर चुका हूं। शरीर में इतनी शक्ति नहीं जो घूम फिर कर आर्यधर्म का प्रचार कर सकूं। तुमसे आशा थी वह भी लुप्त होती जा रही है। तुम्हारा संन्यास मुझे अकारण प्रतीत होता है। संसार से भागना कायरता का सूचक है।'

वेदानन्द उनके चरणों के पास एक शिला पर बैठ गया। वह संयत स्वर में बोला—'गुरुदेव ! मैं आर्यधर्म के प्रचार की आवश्यकता ही नहीं अनुभव करता। धर्म एक प्राकृतिक पौधा है जो स्वतः विकसित होता रहता है।'

'यदि उसे मदान्ध पशु उजाड़ने लगें ?'

'तब उसे विनष्ट हो जाना चाहिए। उसमें जीवनी शक्ति का अभाव होगा तो उसे नष्ट होने से कौन रोक सकता है। कोई धर्म केवल ज्ञान के शीशमहल में बंद होकर जीवित नहीं रह सकता। आर्यधर्म ने जितनी शक्ति दूसरों की आलोचना में लगाई अगर उतनी शक्ति अपना घर बुहारने में लगाते तो संगठन दूना मजबूत होता, इस घर में दूनी पवित्रता होती।'

सुधानन्द जी अपनी हिमधवल दाढ़ी को सहलाते हुये बोले—'मैं तुम्हारे आक्रोश का कारण नहीं समझा।'

'आज आर्यधर्म को विद्वानों की नहीं वरन् नेताओं की आवश्यकता है। जो लच्छेदार भाषा में चार इधर की और चार उधर की हांक सकें। धर्म चाहे जहां जाये इससे उन्हें सरोकार ही नहीं। मैं एक आर्यसमाज के मंत्री को भली प्रकार जानता हूं। दोनों समय संध्या करते हैं। हर आयोजन में भाग लेते हैं। पेशे से पटवारी हैं। सिगरेट तक भी दूसरों के जिम्मे पीना चाहते हैं। रिश्वत से एक शानदार इमारत बनवा ली है। अच्छी तरह बोलना तक नहीं आता। मंत्री वे नहीं उनकी जमा बैंक राशि है।'

'लेकिन बिना आलोचना के रक्षा सीमा सशक्त नहीं हो पाती वत्स ! अशुभ परिवेश समाप्त किए बिना शुद्ध पर्यावरण का निर्माण नहीं हो सकता है।'

'मंडल का सहारा लेकर यदि धर्म-दुर्ग को अभेद्य बनाया जा सके तो निराधार आलोचना के पत्थर टकराकर स्वतः लौट जायेंगे। दूसरों को निर्बल करने में क्या हम निर्बल नहीं होंगे ? निर्माण का अर्थ यह तो कदापि नहीं गुरुदेव !'

'वेदानन्द'—गुरुदेव गम्भीर हो गये—'इन तर्क-वितर्क से कुछ होने वाला नहीं। देश को, विश्व को चाहिये एक ज्योति।'

यह सुनकर वेदानन्द की बाँछें खिल गईं—'गुरुदेव! यही तो मैं भी कहना चाहता हूं। जो धर्म केवल सिद्धान्तों एवं तर्क-वितर्कों पर टिका रहेगा—वह कर्मकाण्ड की लपेट में आकर रह जायेगा। भक्ति और श्रद्धा से हीन धर्म केवल मशीन है। आर्यधर्म का यही हाल हो रहा है। केवल 'आर्य' शब्द नाम के साथ जोड़े जाने से किसी को सद्गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती। मंच पर खड़े होकर जो 'महर्षि दयानन्द की जय !' बोलते हैं, अपने आपको दयानन्द का शिष्य बताते हैं, उनसे पूछो किसके बच्चे वेदों का अध्ययन कर रहे हैं ? अगर नहीं कर रहे हैं तो इसके लिए किराये पर तो कोई नहीं लाया जा सकता।

सुधानंद जी काफी देर तक चुप रहने के बाद बोले-'पुत्र तुम जो कह रहे हो उसके विरुद्ध स्वयं ही आचरण कर रहे हो। यदि एक व्यवस्था तुम्हारे विचार से दोषपूर्ण है तो उसे सुधार दो। जो सुधार नहीं कर पाता, उसे किसी व्यवस्था में दोष निकालने का अधिकार नहीं है। संसार जो रास्ता तय कर चुका है; वह हमारे कर्म की इति नहीं है। इति तो मरण सूचक है। हमें और आगे बढ़ना है। इन गुफाओं में छुपकर हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे। अतीत से उतना ही लो जितना आवश्यक है। यहाँ आये तुम्हें छह मास हो चुके। युवावस्था में केवल भक्ति में लीन होना और बाकी विश्व को भूल जाना भी एक प्रकार का स्वार्थ है। सच्चा सन्यासी वही है जो संसार में रहकर, संसार में कार्य करके भी संसार से ऊपर हो।'

'तिस पर भी छोड़ी गई गृहस्थी को फिर से स्वीकार करना मेरे वश में नहीं। समाज के झूठे रीति-रिवाजों में पली धर्मपत्नी मेरी उन्नति में बाधक है। मैंने साधारण परिवार की कन्या को इसीलिये स्वीकार किया था कि वह मेरे घर में ठीक तरह से निर्वाह कर लेगी, शिक्षा भी उसकी बहुत ही कम थी। मैं प्रथम श्रेणी में एम० ए० उत्तीर्ण करने वाला छात्र। घर की निर्धनता के कारण पत्नी को मेरे माता-पिता अच्छा कपड़ा-गहना विवाह के अवसर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर न दे सके। इस कारण से मुझे जितना ऊँच-नीच सुनना पड़ा, कभी किसी से नहीं सुना। मेरे माँ-बाप ने समाज की बोदी परम्परा को अपना पेट काटकर भी निभाया। मेरी पत्नी को मेरी सास ने कहा था कि अगर ससुराल वाले तुम्हें ठीक प्रकार न रखें तो सीधे मेरे पास चली आना। ठीक प्रकार से उसका मतलब था कि मेरी पत्नी मेरे माँ-बाप की सेवा न करे। गाँव की रहने वाली मेरी सास ने चक्की चलाने को दुर्भाग्य का सबसे बड़ा लक्षण माना। यह सुनकर कि उसकी बेटी को पीसना पड़ता है—मेरी सास खूब रोई थी। इन उल्टी शिक्षाओं के कारण मेरी पत्नी मुझे रोज मार्मिक पीड़ा पहुँचाया करती।'

'कर्मक्षेत्र से भागना कहाँ की बुद्धिमत्ता है। कटुता की चाहरदीवारी में ही मधुरता का वास होता है। यदि तुम अपने अनुसार समाज को नहीं बदल सकते, यह तुम्हारी दुर्बलता ही कही जायेगी। तुम्हारे साथ जो समस्या है मैं उसे अनुभव करता हूँ। लेकिन तुम्हारे जैसा युवक भी यदि जीवन से निराश है तो इसका कोई उपाय नहीं। पर.....।" सुधानंद की आँखें सजल हो गईं।

उस बूढ़े चेहरे पर जो व्यथा उभर आई थी वेदानंद उसका सामना न कर सका। उसके अधर कम्पित हो उठे—'गुरुदेव क्या आपकी व्यथा का कारण मैं ही हूँ?'

'ऐसा ही समझो'—सुधानंद जी का गला भर आया।

'तब मुझे आदेश दो गुरुदेव।' वेदानंद ने अपने हाथ सुधानंद के चरणो पर टिका दिये।

'गैरिक वसन संन्यासी की पहिचान नहीं। जो निर्लेप भाव से कर्म करता रहे वह संसार में रहकर भी संन्यासी है। आदेश मैं नहीं दे पाऊँगा, तुम पालन नहीं करोगे।' सुधानंद ने ठंडी साँस ली।

'यदि मैं 'हाँ' कह दूँ?' वेदानन्द ने पूछा।

सुधानंद के नेत्र चमक उठे—'सच।'

'हाँ गुरुदेव'—वेदानंद का गला भर आया। सुधानंद ने अपना शुष्क लेकिन महत्वपूर्ण हाथ वेदानंद के सिर पर रख दिया—'जाकर अपनी गृहस्थी सँभालो और आर्यधर्म में नई ज्योति जगा दो।'

'ऐसा ही होगा गुरुदेव!' वेदानंद चरण-धूलि लेकर खड़ा हो गया।

सुधानंद के मुखमण्डल पर मानों शत-शत पाटल खिल गये। सूर्य की किरणें पर्वत शिखर की दूधिया बर्फ को अपने रंग में रंग रही थीं। कहीं दूर बैठी कोकिला ने भी अपने मधुर स्वर में मानो इस प्रस्ताव का समर्थन किया।

संसार में सत्य-धर्म-ज्ञान का सन्देश
फैलाने के लिए
दयानन्द संस्थान द्वारा प्रकाशित
जन-ज्ञान (साप्ताहिक) के सदस्य बनाइए

वैदिक शिक्षादर्शन

—डा० कपिलदेव द्विवेदी (एम. ए. डी. फिल.)

भारतवर्ष में वर्तमान शिक्षा-पद्धति की आलोचना हो रही है और इस विषय पर गहन चिन्तन हो रहा है कि किस प्रकार शिक्षा पद्धति में प्रचलित दोषों का निवारण किया जा सके। इन दोषों के निवारण के लिए यदि वैदिक शिक्षा पद्धति पर ध्यान दिया जाय तो हमें इसका उचित समाधान मिल सकता है। प्राचीन महर्षियों ने इस विषय पर मनन किया था और उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले थे, वे आज की परिस्थिति में भी उपादेय हो सकते हैं। इसका ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

शिक्षा का उद्देश्य—अथर्ववेद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है—व्यक्ति की बुद्धि को तीक्ष्ण करना, उसे उत्तम शिक्षा के द्वारा उन्नत करना, उसके जीवन को प्रकाशित करना, तथा प्रबुद्ध करना, उसे प्रगति की ओर जाते हुए सभी प्रकार के सौभाग्य से युक्त करना।

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय। सचितं चित् संतसं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः॥ अथर्व० ७-१६-१

शिक्षा का उद्देश्य है कि वह जीवन को सुख और शान्ति से युक्त करे तथा उसको मधुर बनाए।

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति। मा ते युयोम संदृशः। अथर्व० ७-६८-३

शिक्षा मनुष्य को शान्ति देने वाली हो, मन को पवित्र करने वाली हो, सद्विचारों को पुष्ट करने वाली हो और जीवन में शक्ति प्रदान करे।

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यो सुम्नयुः सुहवो यः सुवत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः॥ अथर्व० ७-१०-१

शिक्षा मानव में तेजस्विता का आधान करती है, अतएव शिक्षा के साथ ही प्राचीन शिक्षा पद्धति में ब्रह्मचर्य और संयम पर बहुत अधिक बल दिया गया है।

सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम्। अथर्व० ६-४१-२

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।
अथर्व० ११-५-१८

अतएव निरुक्त के रचियता महर्षि यास्क ने निरुक्त में आचार्य का लक्षण देते हुए आचार एवं संयम की शिक्षा देने वाले को आचार्य कहा है—

आचार्यः—कस्मात्? आचार्य आचार ग्राहयति। आचिनोत्यर्थान्। आचिनोति बुद्धिमिति वा।
निरुक्त १-४

शिक्षा का उद्देश्य यह भी है कि वह मानव में कर्मठता और स्फूर्ति का संचार करे, जिससे मनुष्य उत्साह-पूर्वक जीवनयात्रा को सुखद बना सके। जीवन की यही कर्मठता मानव जीवन में सौभाग्य और समृद्धि का संचार करती है।

अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः॥ अथर्व० २०-८९-३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मोक्ष हमारा लक्ष्य

—देवीचरण

जब दो यात्री परस्पर बातचीत करते हैं, तो यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है और प्रत्येक अपना-अपना स्थान बड़े गौरव के साथ बतला देता है। किन्तु हमारे शरणार्थी भाई जो पाकिस्तान बनने पर अपनी जन्म-भूमि छोड़कर इधर आये हैं, कुछ व्यथा के सहित अपने प्राचीन स्थानों का वर्णन करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि हम सभी शरणार्थी हैं और यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं, अथवा अपना मूल स्थान पुनः प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें पुरुषार्थी बनना होगा। इसके सिवा कोई चारा नहीं। इस प्रकार की व्यथा तो हमारे हृदय में भी होनी चाहिये और इस व्यथा को मिटाने हेतु ही तो वास्तव में यह मानव जीवन मिला है।

यह कोई पहेली नहीं है। साधारण सी बात है कि हम सब कौन हैं? आत्मायें, न कि शरीर, और इस दुनिया के स्थान तो इस शरीर के हैं, जो नष्ट होता रहता है। शरीर को तो आत्मा कभी धारण करता है तो कभी छोड़ देता है। ये भांति-भांति के चोले निज कर्मानुसार मिलते हैं और इन्हें प्राप्त करके इस संसार में भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाति, भोग व आयु बिता कर आगे प्रयाण करते रहते हैं। इन सब अनेक योनियों में केवल मानव का चोला ही ऐसा है जिसमें आकर आत्मा कर्ता व भोक्ता दोनों रूपों में प्रकट होता है; अन्यथा और जितनी भी योनियां हैं, वे सब भोक्ता मात्र हैं। अतः इसका कितना महत्त्व है, यह बात बारम्बार वेदों एवं उपनिषदों ग्रंथों में अनेक प्रकार से बतलाई गई हैं। जितनी भी वार्ताएं उपनिषदों में आती हैं, वे सब इसी आशय से आई हैं। याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी वार्ता, नारद-सनत्कुमार वार्ता, यम-नचिकेता वार्ता और अनेक ऋषि-मुनियों के परस्पर संवाद तथा राजा जनक की सभा में की गई चर्चायें—ये सब इसी गुत्थी को सुलझाने व समझाने के प्रयास-मात्र हैं! उपनिषदों में इसी बात को कितने सीधे व सरल शब्दों में कहा है, 'न चेद वेदी न्महती विनष्टि' अर्थात् यदि इस तत्त्व को नहीं समझा तो महान् नाश हुआ समझो।

लोमेश ऋषि के बारे में कथा आती है कि उनकी आयु सहस्रों वर्ष की थी, परन्तु उन्होंने कहीं भी कोई स्थान, आश्रम अथवा कुटिया आदि नहीं बनाई। वे सदैव एक चटाई बगल में दबाये भ्रमण करते रहते थे। जब कभी किसी ने उनसे यह बात छेड़ी कि व कोई कुटिया बना लें तो उनका उत्तर होता था, इस थोड़ी सी जिन्दगी के लिए कुटिया बनाकर क्या करेंगे।' ऐसा था उनका अपरिग्रह का दृष्टिकोण। हमारे ग्रंथों में वर्णाश्रम प्रणाली का वास्तविक तात्पर्य यही है कि हमारा सांसारिक वस्तुओं से लगाव न हो। वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम जो पिछले आधे मानव-जीवन के अंग हैं, उनमें यही साधन व्रत है। मानव वानप्रस्थ में शनैः शनैः इस संसार के बन्धनों से उपराम होता जाता है और फिर संन्यास आश्रम में पहुँचने तक, उसका यह मोह अथवा लगाव इतना शिथिल हो जाता है कि इसे समाप्त करने में दुःख का प्रश्न ही नहीं उठता, अपितु एक असीम आनन्द की प्राप्ति होती है। कारण यही कि अब उसके परिवार की परिधि अत्यन्त विस्तृत हो गई, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसके जीवन का अंग बन गया। सारा संसार अब उसका घर है और वह सारे संसार का है।

आत्मा अनादि व अमर है और उसकी यह यात्रा भी बहुत लम्बी है। पता नहीं, किन-किन योनियों से गुजर कर उसे मानव का रूप प्राप्त हुआ है और ये जितनी भी योनियां हैं, इस लम्बी यात्रा में पड़ाव के तुल्य हैं। अतः यदि मानव की योनि में आकर, इसी को अंतिम ध्येय समझ, भौतिक संपदा को इकट्ठा करने, मकान आदि बनवाने में ही सारी आयु बिता दें, तो इस श्रेष्ठ देव-योनि को प्राप्त करने का क्या लाभ? इस संसार में जितना भी दुःख, कष्ट व क्लेश है, वह सब इस 'मेरा' के कारण है। यदि मानव यज्ञीय दृष्टि-कोण को अपना ले अथवा 'इदं न मम'—यह मेरा नहीं है, उस प्रभु का है, हम तो केवल इसकी देख-भाल करने वाले हैं, स्वामी तो कोई और ही है—अतः इस संसार की संपदा सर्वजन-हिताय, बहुमत सुखाय है, तो बखेड़ा ही समाप्त हो जाता है, और यह दुनिया जो विविध प्रकार के झगड़ों टंटों से नरक बनी हुई है, स्वर्ग में परिणत हो जाये।

सामवेद में इस गुत्थी को सुन्दर रीति से सुलझाया गया है, और बतलाया गया है कि वास्तविक स्थान कौनसा है जिसके लिये प्रयास व परिश्रम करने की आवश्यकता है। वेद-मंत्र हैं :—

प्रदेवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना।
अनुमातरं पृथिवी विवावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि।

द्वितीय पंक्ति में स्पष्ट वेद-मंत्र कह रहा है कि इस पृथिवी पर रहने के बाद लौट कर मोक्ष में स्थित होना है। बस यही हमारा वास्तविक निवास स्थान है। किन्तु इसे पुनः प्राप्त करना इतना सहज नहीं; निरन्तर प्रयास करना है और सदैव प्रयत्नशील रहना है। जैसा कि वेद मंत्र की प्रथम पंक्ति में बतलाया गया है यदि हम उस प्रभु का सान्निध्य मोक्ष फल चाहते हैं तो हमें उस परमात्मा का पुत्र दास बनना होगा, सदा आगे बढ़ना होगा अग्नि की तरह। इस प्रकार दैवीगुणों को धारण करते हुए, इन्द्र के तुल्य उस सर्वान्तर्यामी में स्वयं को प्रतिष्ठित होना है।

मानव इस संसार की धुरी है। सारी दुनिया इसके चारों ओर घूमती है। जैसी इसकी कृति होगी, उसी के अनुरूप यह लोक बनेगा--स्वर्ग या नरक। अतः मनुष्य का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। अन्य सब प्राणी व जीव जन्तु इसकी कृपा पर निर्भर रहते हैं। परन्तु आज मानव तुच्छ बातों को लेकर बखेड़ा पैदा कर रहा है। भूल जाता है; एक दिन सब यहीं पड़ा रह जायेगा कुछ भी साथ नहीं जायेगा। केवल हमारे कर्मों का लेखा-जोखा हमारा अभिन्न साथी है और हमारा लक्ष्य है प्रभु के धाम पर पहुँचना अथवा मोक्ष प्राप्त करना। यदि मानव इस तथ्य को समझ ले, तो इस दुनिया के पदों के लिये लड़ना छोड़ दे। □

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतीय छात्र एवं अनुशासन

—प्रकाशवती शास्त्री एम० ए०

आज स्वतन्त्र भारत प्रगति के पथ पर नित नए चरण रख रहा है। आर्थिक, औद्योगिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रत्येक क्षेत्र में सोत्साह क्रियाशील है। समस्त नेता तथा उच्चाधिकारी दिन रात इस प्रयत्न में संलग्न हैं कि देश की सारी आधि व्याधि दूर हों। अशिक्षा का नाश हो, शिक्षा का प्रकाश हो, बेकारी की समस्या का समाधान हो, देश में नित नए उद्योग तथा व्यवसायों का जन्म हो, देश के जन-जन की विविध असुविधाएं दूर हों, देश की संस्कृति तथा कला का पूर्ण विकास हो।

छात्र देश का प्राण है, देश का भावी नेता है, देश की विचारधारा का वाहक तथा संचालक भी है। एक प्रगतिशील तथा वेगवाहिनी नदी की भाँति जहां वह देश को हरा-भरा तथा समृद्ध बना सकता है वहाँ उसको नष्ट भ्रष्ट भी कर सकता है, यदि वह अनुशासन तोड़ दे।

स्वतन्त्रता के वर्षों के कार्यों की गतिविधि पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, हमें ऐसे अनेकों उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं, जिनसे स्पष्ट है कि जिस युवक-वृन्द ने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर देश का हित किया था वही आज देश के हित में पग-पग पर बाधक सिद्ध होने लगा था। कभी पटना में नियम भंग कर अशांति उपस्थित करता था तो कभी बम्बई में उपद्रव कार्यों में सम्मिलित होता था। अनुशासन भंग करना साहसी कार्य समझा जाता था। यह साहस नहीं वरन् दुःस्साहस था। स्कूलों तथा कालिजों में समय-समय पर उपद्रव, अपनी संस्था के नियमों को न मानना, गुरुजनों की अपमानपूर्ण आलोचना करना उसने अपने जीवन के उत्तम स्वभाव का अंग समझ लिया था। भारतीय छात्र यह भूल गया था कि उसका आभूषण विनय है उसका मार्ग संयम का है।

अब प्रश्न यह है कि यह उच्छृंखलता की भावना विद्यार्थियों में आई कैसे ? ऐसी-ऐसी वृत्तियों का जन्म देने वाली परिस्थितियां अधिकतर राजनतिक ही हुआ करती हैं। भारत ने सदियों की गुलामी को नष्ट करने के लिए जो असहयोग का मार्ग अपनाया वह भारतीयों के मन का स्वभाव बन गया और वही भावना आ गई है हमारे छात्रों में भी। वे यह नहीं सोचते कि उस समय शासन विदेशी था। उसकी शासन प्रणाली विदेशी तथा हमें दास बनाने वाली थी। उनका विरोध करना धर्म तथा अहिंसा था। आज जबकि शासन अपना है वह वृत्ति अधर्म तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे दुर्भाग्य ने हमारा साथ न छोड़ा। देश को दो भागों में विभक्त किया गया तथा उसके फलस्वरूप समूचे देश भर में जो अमानुषिकता, अनुशासनहीनता तथा उच्छृंखलता की लहर चली उसका प्रभाव भी भारतीयों, विशेष कर युवक छात्र-वृन्द पर स्थायी रूप से रह गया जिसका कटु फल यत्र-तत्र देखने को मिला। मनुष्य की मानसिक वृत्तियाँ ऐसी हैं कि यदि इनको नियन्त्रण में न रखा जाए तो यह अतिशीघ्र ही सीमा से बाहर कार्य करने की अभ्यस्त हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त प्रजातन्त्र तथा गणतन्त्र स्वतन्त्र इन शब्दों का अर्थ भी अशुद्ध समझा जा रहा था। प्रत्येक शब्द के साथ लगे हुए तन्त्र शब्द को लोग भूल जाते थे। अधीनता अर्थात् नियम पालन से मानव जब तक मानव रहना चाहता है कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है। इन वादों तथा तंत्रों में केवल अन्तर होता है बनाने वालों का। परतन्त्र देश के नियम बनाते हैं पराए, स्वतन्त्र देश के नियम बनाते हैं स्वयं। जनतन्त्र तथा प्रजातन्त्र के नियम बनाती है जनता। इसके पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति उन नियमों के पालन करने में बाध्य है। नियम पालन में कोई स्वतन्त्र नहीं। इस जरा सी अज्ञानता के कारण ही देश में स्थान-स्थान पर हड़तालों की बाढ़ आ रही थी। देश की यह व्यापक मनोवृत्ति भी छात्रों में अनुशासनहीनता का कारण थी।

लगभग २०० वर्षों तक पश्चिम के लोगों ने हम पर शासन किया है अतः उनकी सभ्यता तथा आदर्श हमारे विचारों पर छा गए। यह भी एक कारण था छात्रों की अनुशासनहीनता का। क्योंकि भारतीय आदर्श में जो गुरुभक्ति तथा राजभक्ति उपदिष्ट है पश्चिम उसका घोर विरोधी है। भारतीय आदर्श के अनुसार माता पिता गुरु तथा राजा ईश्वर का स्वरूप हैं, उनकी आज्ञा की अवहेलना करना उनके कार्यों की मनमानी आलोचना करना नीतिविरुद्ध माना जाता है। जबकि पश्चिमी सभ्यता के अनुसार सब समान हैं। छात्र तथा गुरु माता पिता तथा सन्तान राजा और प्रजा प्रत्येक स्वतन्त्र है कोई छोटा बड़ा नहीं। यद्यपि यह सिद्धान्त की दृष्टि से सत्य है कि मानव मात्र के समान अधिकार हैं। भारतीय नीति दर्शन भी इस बात में सहमत है। एक घर में यदि माता पिता को पूज्य नहीं माना जाता, उनकी आज्ञा पालन करना धर्म नहीं समझा जाता तो क्या होता है ? सब मनमानी करते हैं कोई व्यवस्था व शान्ति उस घर में नहीं रहती। आचार्य को आचार का निर्माता कहा गया है। पर यदि आप आचार्य को अधिकार ही नहीं देते, छात्र अपने आप को आचार्य के अधीन ही नहीं समझता, प्रतिक्षण उसके दोष निकालता तथा उसकी अवज्ञा करता है तो वह क्या आचार बनावेगा ? यह ठीक है कि आचार्य बनने की योग्यता भी उसमें होनी ही चाहिए पर एक बार जब आपने उसको यह अधिकार दे दिया तो फिर उस पर पूर्ण विश्वास तथा भरोसा होना चाहिए।

(शेष पृष्ठ २६ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज : आज के संदर्भ में

—हंसराज 'खादिम'

दयानन्द अतीत की स्मृति नहीं, भविष्य के निर्माता थे। उनका दृष्टिकोण व विचार उनके जीवन में भी समय के अनुकूल था, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी वह सदैव हमारा मार्गदर्शन करता रहेगा। उन्होंने मानवता के त्राण एवम् कल्याण के लिये आर्यसमाज की स्थापना की थी। मेरठ में अज्ञान के अंधकार में फंसे लोगों ने उन पर ईंटों की वर्षा की थी और लहुलुहान हुए महर्षि ने भविष्यवाणी की थी:—

'आज आप मुझ पर ईंटों की वर्षा कर रहे हैं, समय आयेगा आप मेरे अनुयायियों पर पुष्पों की वर्षा करोगे। जहां-जहां मेरा रक्त गिरा है, और मेरी वाणी वा लेखनी पहुंची है वहां-वहां ऐसे वीर बलिदानी कर्मठ, कर्मयोगी तत्ववेत्ता उत्तमोत्तम विद्वान् सेवा श्रद्धा युक्त आदर्श कार्यकर्त्ता जन्म लेंगे, जो अपनी श्रद्धा निष्ठा भक्ति और बलिदान भावना से देश धर्म और समाज की महान सेवा कर आर्यसमाज का महान यश बढ़ाएंगे। आर्यसमाज मैंने वेद के प्रकाश के लिये मानव कल्याणकारी कल्पतरु लगाया है, यह खूब फले फूलेगा, और संसार अपने कल्याण मय उत्थान के लिए इसका अनुगामी होकर धन्य हो जायेगा। कालान्तर में मैं नहीं रहूंगा, किन्तु आपमें से बहुत से लोग और आने वाले युग में इस महान् संस्था का प्रकाश उभार और चमत्कार देखोगे, और इसके अनुकरण में संसार सुख समृद्धि सम्पन्न जीवन बनाने पर गौरवान्वित होगा।

दिल्ली में शताब्दी समारोह पर देश के कोने कोने से आये लाखों नरनारियों ने महर्षि की जय के स्वर गुंजा कर उनकी भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध कर दिया। महर्षि का देश पर क्या प्रभाव हुआ, इसका राष्ट्रनायकों की भाषा में ही अवलोकन करें।

महाकवि टैगोर ने कहा था 'जंगली घास की तरह देश में चारों ओर अंधविश्वास के गढ़ खड़े थे, जिनके कारण देश की एकता समाप्त होकर, देश पतनोन्मुख हो रहा था। दयानन्द ने वैदिक संस्कृति का प्रकाश कर देश को नया जीवन प्रकाश दिया।

पं० नेहरू ने अपनी प्रसिद्ध रचना डिस्कवरी आफ इण्डिया में लिखा है 'आर्यसमाज, इस्लाम और ईसाइयत के आक्रमण के विरुद्ध आंतरिक संघर्ष, और बाहरीरूप में उनके आक्रमण का उत्तर था। उसने आन्तरिक रक्षा और बाहरी आक्रमण से रक्षा करते हुए, देश में आत्मविश्वास स्वाभिमान और राष्ट्रीय चेतना जगा, जहां सामाजिक बुराइयों का दूर किया, वहां शिक्षा को महान् बढ़ावा देकर, संगठन भावना से देश को देश के लिये सोचने योग्य बना मजबूत बुनियादों पर खड़ा कर दिया।'

गांधी जी ने कहा 'जनता से सम्पर्क, सत्य-अहिंसा, जन-जागरण, लोकतंत्र, स्वदेशी प्रचार, हिन्दी, गोरक्षा, स्त्रीउद्धार, शराबबंदी, ब्रह्मचर्य, पंचायत, सदाचार, देश उत्थान के जिस-जिस रचनात्मक क्षेत्र में भी मैंने कदम बढ़ाये, दयानन्द के आगे बढ़े कदमों ने मेरा मार्ग दर्शन किया।' श्री सरदार पटेल ने कहा 'दयानन्द भारत का राजनीतिक गुरु, था, क्रान्तिकारी नेताजी सुभाष ने कहा स्वराज्य मन्दिर में पहली मूर्ति दयानन्द की ही स्थापित की जायेगी।

स्वराज्य सेनानियों की यह श्रद्धांजलियां आर्यसमाज को इसलिये मिलीं कि आर्यसमाज देश के स्वराज्य संग्राम का हरावल दस्ता था। देश के लिये फांसी का फंदा चूमने वाले, और जेल जाने वालों में ६० प्रतिशत आर्यसमाजी ही थे। तब हर क्रान्तिकारी को आर्यसमाजी ही कहा जाता था, कामागाटामारू के क्रान्तिकारियों को भी आर्यसमाजी ही घोषित किया गया था। 'नमस्ते' उनका अभिवादन, सत्यार्थप्रकाश राष्ट्रीय रचना, डी० ए० वी० कालेज और गुरुकुल क्रान्तिकेन्द्र कहलाते थे। तब इस सत्य का समर्थन करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था जहां-जहां भी आर्यसमाज मन्दिर हैं वहां-वहां स्वतंत्रता आन्दोलन की ज्योति प्रखर और प्रचण्ड हुई है।

कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने आर्यसमाज में प्रज्ज्वलित क्रान्ति की ज्योति बुझा देने के लिये इस संस्थान में अपने अपने अफसर लगाये और फूट डालकर राजनीति से इसे विमुख रखने का प्रयत्न किया। तब लाला लाजपतराय ने दुख से लिखा था कि जिस आर्यसमाज ने अपने तप त्याग और बलिदान से भारतीय स्वतंत्रता की भूमि तैयार की, अंग्रेज की दमन शक्ति जिसके बढ़ते कदम न रोक सकी, सरकार ने उसमें फूट डालकर राष्ट्रीयता से उसका मुंहमोड़ा, उसका आत्महनन कर दिया। क्रान्तिकारी आर्य कांग्रेस और दूसरे क्रान्तिकारी दलों में चले गए। इससे निःसन्देह आर्यसमाज की महत्वाकांक्षाएं मुरझा गईं, परन्तु उसमें दयानन्द का तप बोलता था इसलिये इस पवित्र वेदी पर बैठ कर सरकारी अधिकारियों को भी अपने नैतिक उत्थान और चरित्र बल का परिचय देना ही पड़ा जिससे विलासी दुराचारी जो आर्यसमाज के विनाश के लिये आर्यसमाज में आए थे, आर्यसमाज के सत्य और तप ने उनको पवित्र और चरित्रवान बना दिया। इस प्रकार आर्यसमाज ने अंग्रेज की चुनौती का मुंहतोड़ उत्तर दिया।

आज आर्यसमाज में नौजवान नजर नहीं आते। जो ईंटें आर्यसमाज की मिट्टी में की हैं, वह दूसरे भवनों में लग रही हैं। आर्यसमाज के शानदार अतीत को देखने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वाला कोई भी व्यक्ति आज के आर्यसमाज को देखकर चकित होकर पूछे बिना नहीं रह सकता कि स्वराज्य के लिए सीना तान लड़ने वाली और महान् सामाजिक क्रान्ति का शंखनाद करने वाली यह प्रतिभा सम्पन्न संस्था आज आकर्षणहीन क्यों ? इसकी यज्ञाग्नि मन्द क्यों हो गई है। इसमें अब राष्ट्रीय उत्थान के शोले क्यों नहीं भड़कते। स्पष्ट है कि जीवन में अग्नि के न रहने से जीवन की गति ही रुक जाती है। जो संस्था त्याग कर सकती है वह चमकती है, जो नहीं कर सकती वह धूमिल हो जाती है। राष्ट्रीय जीवन का मूलतत्व आचार है, बिना आचार के आदर्शों का प्रचार नहीं हो सकता। संसार आदर्श को नहीं, नेताओं का व्यवहार देखता है। जैसे देह का मूल्यांकन आत्मा से होता है, ऐसे ही आदर्शों का मूल्य व्यवहार से आंका जाता है। यदि आदर्श व्यवहार में साकार नहीं होते, तो उनका कोई मूल्य नहीं। जैसा हम समाज बनाना चाहते हैं वैसा हमें स्वयं बनना पड़ेगा। बिना स्वयं यज्ञ की समिधा बने भटकते हुओं के लिए प्रकाशस्तम्भ नहीं बना जा सकता।

महर्षि का चिन्तन धर्म अर्थ काम और मोक्ष की उपलब्धि था तथा हमने आज धर्म और मोक्ष को छुट्टी दे दी है। काम और अर्थ ही हमारे लिये मुख्य रह गए हैं। काम की पूर्ति के लिए अनर्थ से अर्थ संग्रह कर, और भोग के रोग में फंस हमारा जीवन पाप और दुखों से भर गया है। महर्षि ने पैसे को भगवान समझने वालों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए गुण कर्म स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया। शारीरिक उन्नति आत्मिक और सामाजिक उन्नति के अर्थ रोटी कपड़ा मकान। काम शिक्षा चिकित्सा के साथ आध्यात्मिक उन्नति और राष्ट्रीय निर्माण की भावना भी है। यदि हम वर्ण व्यवस्था के अनुसार वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम व्यवस्था को अपना लेते तो देश भर के तमाम विद्यार्थी उनसे निःशुल्क उच्च शिक्षा पाकर स्वतः ही दयानन्द के शिष्य बन गये होते और उनके गृहस्थ सम्भालते ही देश का नेतृत्व अपने आप ही आर्यों के हाथों में आ जाता और वैदिक युग का शुभारम्भ हो जाता।

आर्यसमाज के सिद्धांत पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न होकर, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझें अतः कुछ लोगों द्वारा समस्त धन अपने कब्जे में कर, और उसे अपने विकास के लिए अपव्यय करने के कुकृत्य के विरुद्ध आर्यसमाज प्रबल अवरोध है। वैदिक धर्म का ज्ञान उत्पादन वितरण और उपभोग का संतुलन है। संचय करना, अपव्यय करना, और किसी को न मिलना वैदिक धर्म की दृष्टि में पाप है। सुशिक्षा, श्रम,उद्यम, अनुसंधान द्वारा उत्पादन बढ़ाकर कला कौशल विज्ञान उद्योग की चेतना जगाकर ही हम आने वाली पीढ़ियों को उज्ज्वल और स्वर्णिम बना सकते हैं।

वैदिक वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण समाज का मस्तिष्क है, उसका काम समाज का ज्ञान वर्धन, क्षत्रिय देश की भुजा है अर्थात् सुरक्षा, वैश्य देश का हृदय या सुख समृद्धि कर्त्ता और शूद्र देश सेवा का बोझ उठाने के कारण, राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी हैं। ब्रह्मचर्य समाज की तैयारी, उसमें विद्याध्ययन करने सबको समान पठन-पाठन स्थान पान निःशुल्क, गृहस्थ उत्तम समाज निर्माण, वानप्रस्थ आत्मनिरीक्षण और समाज सेवा संन्यास समाज कल्याण की आहुति बनना है। वैदिक धर्म में धन और सम्पत्ति सब भगवान की है सब भगवान के समान अमृत पुत्र हैं। सब को अपने-अपने काम में प्रवीण, कर्तव्य दक्ष हो, शक्तिभर काम करना, आवश्यकता अनुसार हर भोग सामग्री प्राप्त करना, और अपने-अपने बच्चों को उनके गुण कर्म स्वभाव अनुसार कर्तव्य में हस्तक्षेप करा स्वयं समाज सेवा में जुट जाना ही धर्म-कर्म है। आर्यसमाज के दर्शन-चिन्तन में हर समस्या का समाधान विद्यमान है। आर्यसमाज राष्ट्र की महान ज्योतिर्मय सत्ता है। इसने राष्ट्रीय स्वतंत्रता में, सामाजिक क्रान्ति में, सुशिक्षा, राष्ट्रीय चरित्र और आर्थिक विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज देश की ज्वलन्त समस्या आर्थिक स्वतंत्रता के कार्यक्रम में भी आर्यसमाज महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

(पृष्ठ २४ का शेष)

इससे आगे एक और भी युक्ति है, यह कि भारतीय आदर्श के अनुसार छात्र का जीवन पूर्णतया संयम तथा तपस्यामय होना अनिवार्य है परन्तु आज का छात्र सब प्रकार के मनोरंजन तथा सांसारिक आनन्द भोगने का अधिकारी स्वयं को समझता है। उत्तमोत्तम वस्त्र धारण करना, सुस्वादु भोजन करना, सुगन्धित पदार्थों का सेवन करना तथा अन्य सभी विलास के साधनों का प्रयोग करना उनके जीवन के मुख्य अंग बन चुके हैं। वस्तुतः छात्र स्थितप्रज्ञ होकर ही अपने अध्ययन में भी कुशलता प्राप्त कर सकता है श्रीकृष्ण जी ने लिखा है—

'वशे हि यस्य इद्रियाणि तस्य प्रज्ञा' प्रतिष्ठिता विलासी मनुष्य की इन्द्रियां कैसे वश में रह सकती हैं ?

अतः आज हमें देश की इस कठिनतम समस्या का स्थायी समाधान करना होगा। अपने देश की अमूल्यतम निधि छात्र वृन्द को असंयम के गढ़े की ओर जाने से स्थायी रूप से रोकने के लिए वर्तमान शिक्षण प्रणाली को आमूल परिवर्तित करना होगा। शिक्षा देने के ढंग में ही नहीं, वरन् उसके जीवनयापन प्रकार में भी परिवर्तन करना होगा।

भारतीय आदर्श के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम की रचना करनी होगी। नगर के दूषित वातावरण से दूर गुरुकुलों के ढंग से ऐसे विद्यालयों का निर्माण करना होगा जिसमें विद्यार्थी का जीवन संयम तथा नियम पूर्वक हो। जिसमें उसका सारा आनन्द तथा उत्साह अध्ययनमय हो। जिसमें रहकर वह अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति पूर्ण रूप से कर सके। जिन विद्यालयों का आदर्श भोगवाद न होकर त्यागवाद हो। जिनमें रह कर छात्र जीवन पूर्णतया शुद्ध रह सके। जहां पर आचार्य भी वास्तव में आचार्य हों। उनके जीवन भी एक उद्देश्य को लिए हुए हों। केवल धनोपार्जन के लिए ही जिन्होंने शिक्षण कार्य न अपनाया हो।

आज नवीन प्रकाश में विचरने वाले लोगों को चाहे यह विचार पुराने अथवा दकियानूसी प्रतीत हों पर बिना इनको अपनाये छात्रों का सुधार होने वाला नहीं। ★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रिय भाई भारतेन्द्रनाथ जी,

दयानन्द-संस्थान के प्रकाशन 'जन-ज्ञान' का प्रवेशांक प्राप्त हुआ, एतदर्थ धन्यवाद। रंगीन, नयनाभिराम और प्रेरक आवरण पृष्ठ देखकर और रोचक और जीवन निर्माण सम्बन्धी रचनाएं पढ़कर प्रसन्नता हुई। विशेष रूप से 'मेरा सपना' (राकेशरानी) आओ अब काम करें (भारतेन्द्रनाथ) बढ़ो अकेले ही आगे (सोहन लाल द्विवेदी) शीर्षक कविताएं, विवाह परीक्षा (भीष्म आर्य) शीर्षक कहानी और युग प्रवर्तक दयानन्द (कृष्णकांत), शहीद ऊधमसिंह (जियालाल) शीर्षक लेख पठनीय और संग्रहणीय हैं। आचार्य रत्नसिंह द्वारा आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या (प्रथम नियम) भी कम रोचक व ज्ञानवर्धक नहीं है। मुझे विश्वास है कि जन-ज्ञान ऋषि दयानन्द का संदेश और वेद की बातें जन-जन में प्रसारित करने में सक्षम प्रमाणित होगा। पत्र की प्रगति का आकांक्षी हूँ।

इतने उपयोगी पत्र के प्रकाशन हेतु मेरी शतशत शुभ कामनाएं एवं सद्भावनाएं स्वीकारें।

अंत में मैं यही कहूँगा कि.....

"विरोधाभासों में पुष्पित 'जन-ज्ञान'
मानो कांटों में खिला 'गुलाब'
जो अपनी सुरभि से
जन-जन को सुवासित कर दे
अविद्यान्धकार दूर कर
जनमानस आलोकित कर दे
दर्द की घाटियों में भटकते मानव को
आश्वस्त कर, उसे
कर्तव्य पथ पर आरूढ़ कर दे"

सागर, म० प्र०

—अमृत लाल अकिंचन साहित्य रत्न

कुछ सुझाव

परम पूज्य भारतेन्द्रनाथ जी, सादर नमस्ते।

साप्ताहिक 'जन-ज्ञान' के प्रथम तीन अंक पढ़े। बहुत रोचक पाए। परन्तु आप मासिक जन-ज्ञान को भी जारी रख रहे हैं। सोचता हूं इन दोनों में अन्तर क्या होगा? क्या साप्ताहिक पर्याप्त नहीं? दोनों में ही धार्मिक लेख होंगे तो फिर क्या एक से काम न चल सकेगा?

मैं एक और सुझाव देना चाहता हूं कि साप्ताहिक जन ज्ञान में महर्षि दयानन्द की मान्यता प्राप्त उपनिषदों को "उपनिषद् लेख माला" शीर्षक से या किसी और उपयुक्त शीर्षक से छापते रह कर सब उपनिषदों को छाप दें। इस से साधारण लोग लाभान्वित हो सकेंगे, क्योंकि कथा के रूप में वह साधारण लोगों को वेदों का गूढ़ ज्ञानामृत पिला सकेंगे। मैंने कुछ छोटी-छोटी पुस्तिकाएं महात्मा आनन्द स्वामी जी की पढ़ी हैं जो उन्होंने संन्यास लेने के बाद लिखी हैं। वे इतने सरल शब्दों में हैं और रोचक भी इतनी हैं कि पूर्ण किए बिना चैन नहीं पड़ता। यदि आपने वैदिक धर्म को फैलाना है तो अपने साहित्य की शैली को सरल बनाना होगा और रोचक भी, परन्तु इससे भी काम न चलेगा जब तक साहित्य को सस्ता न बनाएंगे। मैं तो यह ही सोचता हूं कि धन बिना काम न बनेगा परन्तु धन है धनवानों के पास। गांधी जी भी तो धन लेते थे इन्हीं धनवानों से आप। भी ले सकते हैं सो उन को प्रेरित करें आप दयानन्द संस्थान के मैनेजमैन्ट में विद्वानों की एक कमेटी बनाएं जो धन जुटाने का काम संभालें। ये ऐसे व्यक्ति होने चाहियें जो धन-कुबेरों के पास जाकर उन को प्रभावित कर सकें।

मैं हूं तो निर्धन और अल्प-बुद्धि परन्तु अपनी मातृ-भूमि से और देश की स्थिति से दुःखी तो हूं ही, चाहे मेरी हैसियत समुद्र में एक बूंद जितनी ही है। मेरे साधन सीमित हैं और वृद्धावस्था में हूं अन्यथा आप की सेवा में योगदान करता। मेरा विचार है यदि आप मुझे मिलने के लिये अपना कीमती समय थोड़ा सा भी दे सकें तो मैं अपने विचार आपके सामने रख सकूं। अन्त में मैं आपके साहस की सराहना करता हूं।

—बलवन्त सिंह, जैतपुर (हरयाणा)

शुभकामनाएं

आदरणीय सम्पादक जी,

आपकी असीम कृपा से हम आर्य बनने और बनाने में प्रयत्नशील हैं। जनज्ञान मासिक पढ़ कर हमारे आर्य साथी आपको धन्यवाद देते हैं कि ऐसा तन, मन, धन देकर कार्य करने वाला आर्य सेवक हमने नहीं सुना है। प्रभु की असीम कृपा से आप का कार्य पूरा हो।

वैदिक धर्म के महान् प्रचारक आपको मेरा बार-बार प्रणाम।

—माधोराम आर्य

घर को स्वर्ग बनाने के लिए

"धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम"

पढ़िए। मूल्य १) ५० पैसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमें आर्यसमाज पर गर्व है !

अहाहा ! धन्य आर्यसमाज कोटिक वार है तुमको,
बनाया सब विधिहि उपकार अगणित कर ऋणी हमको।
समय था शूद्र प्रभु की वेद वाणी को न सुन सकते,
बताओ प्रश्न फिर क्या है कभी, वे वेद पढ़ सकते।
नहीं अधिकार था स्त्री जाति को पढ़ लिख सके भी वह,
नहीं अन्धेर था यह क्या बने ना शिक्षिता भी वह ?
हमें है याद अबला वह कफन भी पुत्र को ना था।
दशा लख हो द्रवित ऋषि रो पड़ा निज ठोंक कर माथा।
महा अन्धेर वृद्धों से जु ब्याही जाएं बालाएं,
बढ़ें थीं बालपन के ब्याह से भी नित्य विधवायें।
दिखाता था न हमको धीर का कोई बंधइया तब,
पड़े अज्ञान निद्रा घोर में थे सो रहे हम सब।
हमारा राष्ट्र रोगाक्रान्त था प्रत्येक अवयव से,
उंगलियाँ राष्ट्र-नाड़ी पर पड़ीं ऋषिराज की ढब से।
चिकित्सालय किया स्थापित खुलीं चहुं ओर शाखायें,
रखा प्रिय नाम आर्यसमाज क्यों इस पर न बलि जायें ?
लगा चीरा बहाया पीप कर निर्दोष काया दी,
बहाई प्रेम गंगा भी कगारी द्वेष की ढा दी।
सुधारों का चला अभियान जन-मस्तिष्क झकझोरे,
लगे उपयोग करने बुद्धि उतने नहि रहे भोरे।
असत् धी मूर्त्ति की पूजा सिखाई सत्य प्रभु की ही,
प्रचारी वर्ण आश्रम की व्यवस्था वेद वाली ही।
हमें हो गर्व आर्यसमाज पर ऋषि पर 'नरेन्द्र' न क्यों,
चतुर्दिक् सद् व्यवस्था देख बलि जाये न जन जन क्यों ?
वारें धन न तन मन क्यों ? —**नरेन्द्रार्य, मैनपुरी।**

प्रिय बंधु श्री भारतेन्द्र जी, सप्रेम नमस्ते।

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप १४ मार्च को अपने ४८वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। जन्म दिन पर हमारी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। विगत वर्षों में आर्य साहित्य के व्यापक प्रकाशन-प्रचार द्वारा आपने आर्यसमाज की प्रशंसनीय सेवा की है। आशा है भविष्य में भी दयानन्द संस्थान तथा जनज्ञान के माध्यम से आप ऋषि दयानन्द के मिशन को पूर्ण करने में तत्परता से संलग्न रहेंगे। प्रभु से प्रार्थना है कि आप शतायु हों।

भूयश्च शरदः शतात्।

अजमेर। —**भवानीलाल भारतीय,**

मान्य बन्धुवर सादर नमस्ते।

आपका पत्र १४-३-७६ के यज्ञ तथा जलपान के सम्बन्ध में प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। मैं पूर्ण स्वस्थ न होने के कारण सम्मिलित न हो सका हूं। अतः क्षमा प्रार्थी हूं। मुझे ज्ञात हुआ है कि १४ मार्च आपका पावन जन्म दिवस है। आपने अपने पत्र में यह तथ्य नहीं लिखा। मैं आपको इस पवित्र अवसर पर हार्दिक बधाई देता हूँ। करुणा-वरुणालय, परम पिता परमात्मा से आपके दीर्घतम जीवन के लिए अभ्यर्थना करता हूं। आपका जीवन तेज, तप, तितिक्षा और ब्रह्मवर्चस का दीप्तिमान मूर्त्तरूप है। आपने ऋषि दयानन्द के हृदय को समझा है। आप उसे साकार रूप में जनता के सामने रख रहे हैं। वेद-वाणी का प्रचार या प्रसार ही केवल आप नहीं कर रहे हैं—प्रत्युत भाष्यकार भी आप हैं। आपकी साधना यह अवश्य अधूरी रह जाती यदि आपको सहिष्णुता की मूर्त्ति विदुषी ऐसी ही पत्नी न मिलती जो आपके ध्येयों और उद्दिष्ट मार्गों के कण्टकों को निराकृत कर रही है। भगवान् आपको सपरिवार स्वस्थ, वैभवशाली और दीर्घायु करें।

आपका अपना

—**फरीदाबाद, परमानन्द** एम. ए पी.एच. डी.

महोदय,

सत्ताईस फरवरी से २९ फरवरी ७६ तक रोहतक में स्वामी इन्द्रवेश जी, के तत्त्वावधान में हरयाणा प्रान्तीय आर्यसमाज शताब्दी सम्मेलन जिस उत्साह व उमंग से मनाया गया; वह आर्य युवकों व आर्यसमाज के प्रगतिशील तत्त्वों की कर्मठता एवं लगन का प्रतीक है। सत्ताईस फरवरी को रोहतक में निकला शताब्दी जलूस हरयाणा के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। अठ्ठाईस फरवरी की प्रातः ब्रह्मचारियों द्वारा सीधे संन्यास की दीक्षा व कई युवकों द्वारा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का संकल्प एवं उनत्तीस फरवरी को तीन सौ से अधिक युवकों द्वारा आजन्म आर्यसमाज के मिशन में योगदान का संकल्प क्या साधारण घटना थी ? इसके अतिरिक्त रात के बारह-२, एक-२ बजे तक शताब्दी समारोह का आयोजन व युवकों व बुजुर्गों द्वारा २९ फरवरी की दोपहर तक समारोह में पहुँचना ऋषि मिशन की पूर्ण सफलता रही। शताब्दी समारोह के आयोजकों द्वारा भोजन व आवास की व्यवस्था, क्रान्तिकारी प्रस्ताव व योजनायें उनकी योग्यता का सशक्त प्रमाण रहीं।

नई दिल्ली के जन-ज्ञान प्रकाशन द्वारा साप्ताहिक जन-ज्ञान का प्रकाशन स्वागत योग्य है। आपने जिस सूझ-बूझ से "सायण और दयानन्द के वेदभाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन" नामक आपत्तिजनक पुस्तक के विरुद्ध लोहा लिया; वह सराहनीय है। हमें आशा है कि श्री भारतेन्द्रनाथ जी बिना किसी पक्षपात के आर्यसमाज के समस्त समाचारों को प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे; यदि उन्होंने ऐसा किया; तो युवा-शक्ति उन्हें पूर्ण सहयोग देंगी; इसका हम विश्वास दिलाते हैं।

—**आनन्द कुमार आर्य,** दिल्ली।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमर-वचन

हमारे हृदय में कलुष हैं। हमारे मन में ईर्ष्या-द्वेष की लतिकाएं छायी हुई हैं। कमजोर साम्प्रदायिक व्यक्तियों का सुगठित संगठन ऐसे बलवान् व्यक्तियों के दल को हरा रहा है; जो फूट, ईर्ष्या व स्वार्थ के दलदल में फंसा पड़ा है। निन्दाएं बन्द हों; एकाधिकार नष्ट हो। अनुशासनात्मक कार्यवाही के नाम पर आर्यसमाज के शरीर को खंडित करने वाली तलवारें तोड़ दी जायें।

हैदराबाद। —आचार्य वेद भूषण

श्री भारतेन्द्र नाथ जी, सादर नमस्ते।

आप और राकेश रानी जी जो प्रशंसनीय प्रयास कर रहे हैं उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। आर्य जगत् में ऐसा प्रयास करने का साहस पहले किसी ने नहीं किया।

१४ मार्च के साप्ताहिक में आपके सुझाव अगले कार्यक्रम के विषय में पढ़ें। सार्वदेशिक सभा ने जो प्रस्ताव शताब्दी समारोह में पारित किये उनको भी पढ़ा। बड़ा दुःख हुआ मन को इन्हें पढ़ कर। और भी बहुत से स्वामी-संन्यासियों के विचार और कार्य के विषय में भी पढ़ता रहता हूँ। सभी व्यक्ति उन्हीं क्षेत्रों में कार्य करना चाहते हैं जहां कार्य करने की अभी कोई आवश्यकता नहीं है : यहां पर एक संन्यासी बावरे जी आते हैं। वह कुरुक्षेत्र के निकट करोड़ों रुपये के व्यय से एक विश्वविद्यालय खोलेंगे। उत्तर प्रदेश की प्रतिनिधि सभा हर जिले में कई करोड़ रुपये व्यय करके एक-एक अस्पताल और एक-एक विद्यालय खोलेगी। आप का सुझाव है कि हद्विार, मथुरा, इलाहाबाद, वाराणसी और पुष्कर में धर्म प्रचार केन्द्र खोले जावें।

क्या हमारा मन और मस्तिष्क इन क्षेत्रों से आगे नहीं सोच और देख सकता। इन क्षेत्रों में धर्म प्रचार का अर्थ होगा कि आपके प्रयास से कुछ व्यक्ति अपने आप को हिन्दू नहीं आर्य कहने लगेंगे। सम्भव है कुछ मूर्ति पूजा आदि पाखण्ड छोड़ दें। पर इससे होगा क्या? पिछले २० वर्षों में हिन्दुओं की जन-संख्या २ प्रतिशत घटी है। इसी प्रकार घटती रही तो शीघ्र ही बड़ी हानि हो जायेगी। जन जातियों और ऐसे ही दूसरे स्थानों में हिन्दू बड़ी संख्या में ईसाई होते जा रहे हैं। आवश्यकता है वहां चिकित्सालय और विद्यालय खोलने की वहां पर ही धर्म प्रचार करने की, उन्हीं क्षेत्रों में आश्रम खोलने की। पर वहां का काम बड़ा कठिन है और वहाँ पर प्रचारकों को सुविधायें भी नही उपलब्ध होंगी जो मथुरा में। इस लिए सभी व्यक्ति विकसित क्षेत्र से बाहर का नाम नहीं लेते।

इसी सम्बन्ध में एक प्रसंग लिख रहा हूँ। नेपाल में एक स्थान है पोखरा घाटी। यह १९५७-५८ की बात है। उस समय मैं केन्द्र की ओर से नेपाल में था और पोखरा जाया करता था। पोखरा की यात्रा काठमाण्डू से पैदल २० दिन की थी। हवाई यान वहां जाते थे। पर वहां काई डाकघर नहीं था। खाने-पीने का सामान भी नहीं मिलता था। ऐसे स्थान में ३ विदेशी डाक्टर महिलाएं और २ भारतीय ईसाई नर्स आकर बसीं। वहाँ वे न केवल चिकित्सा ही करती थीं वरन और-और भांति की सेवा भी करती थीं। कितना अपूर्व त्याग था उनका। और आप और हमारी क्या स्थिति है? इनके समान त्याग करने वाली स्त्री या पुरुष का नाम मुझे लिखें।

रिटायर होने पर मैंने प्रयत्न किया था कि यदि कुछ रुपया मिले तो नैनीताल के पास कहीं एक कन्या गुरुकुल या अनाथालय खोला जाय। वहां ईसाइयों की ऐसी संस्थाएं हैं पर किसी से कोई सहायता नहीं मिली। अब तो मैं आगामी जून में ७५ वर्ष का हो जाऊंगा।

इसी लिए मेरे विचार में यह सब ढोंग रचा जा रहा है। प्रतिनिधि सभा रुपया एकत्रित करके जनता को मूर्ख ही बनावेगी। बुरा न मानें।

आपका

बुलन्दशहर —प्रयागनारायण

माननीया सम्पादिका जी, सादर नमस्ते।

मुझे जन-ज्ञान साप्ताहिक का द्वितीय अंक कहीं देखने को मिला। इसके लिए धन्यवाद। अंक बड़ा ही आकर्षक और प्रभावशाली प्रतीत हुआ। अब आर्यसमाज के प्रचार में अधिकाधिक बल मिलेगा। इसके सभी अंक उपयोगी एवं संग्रहणीय होंगे ऐसी आशा है। पाखंडों को समूल नष्ट करने में बहुत आवश्यक सिद्ध होगा। आज के युग में ऐसे ही समाचार पत्रों-पत्रिकाओं की नितान्त आवश्यकता है।

मेरा आपसे निवेदन है कि प्रत्येक माह के प्रथम अंक में उस मास का दिनांकी (कैलेण्डर) भी प्रकाशित कराया जाय जिसमें आर्य संवत्, विक्रम संवत् और ईसा संवत् के दिनांक रहें। आज मात्र अंग्रेजी (ईसा) संवत् के दिनांक का ही ज्ञान आर्यों तथा भारतीय जनता को है। फलस्वरूप, उनकी इच्छा आर्य तथा विक्रम संवतों के दिनांकों का उपयोग करने की रहते हुए भी, इसी संवत् के दिनांक का उपयोग करते और अपने संवतों के दिनांक के उपयोग से पूर्णतः वंचित रह रहे हैं। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इसकी व्यवस्था की जा सकेगी।

मैं चाहता हूं कि 'सा० जन-ज्ञान' का प्रसार यहां अधिक हो इसके लिए प्रयास किया जायेगा।

आपका स्नेही

नाथनगर (भागलपुर) —डा० रघुनन्दन पत्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोटि-कोटि धन्यवाद

पूजनीय बहन पं० राकेश रानी, सादर नमस्ते।

बड़े हर्ष की बात है कि पं० भारतेन्द्रनाथ जी और आपने महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की स्वर्गीय आत्मा को शान्ति पहुंचाने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। कोटि-कोटि धन्यवाद। ब्रिटिश शासन काल में हम सभी भारतवासी सात समुद्र पार के डोमों के डोम थे, क्या इज्जत आबरू थी उस समय हमारी? स्वामी दयानन्दजी ने सर्वप्रथम उनके राज्य में सत्यार्थ प्रकाश द्वारा भारतवासियों के हृदय में अंकुर जमाया, विदेशी राज्य से तीव्र घृणा पैदा की है। एकता की पवित्र भावना पैदा करने के लिए छुआछूत का घोर विरोध किया है, नहीं तो अंग्रेजों के डोम, दलित एवं शोषित वर्ग के अमूल्य रत्नों को काफी खो चुके थे वा खोते जा रहे थे। स्वामी जी के बाद पूज्य बापू जी को भी उन सात समुद्र पार के डोमों से घृणा हुई, जो भारतवासी अंग्रेजों के डोम (गुलाम) होने पर भी उनसे घृणा करते थे, उनके हृदयों में क्रान्ति की अग्नि उत्पन्न कर, डा० ह्यूम के सहयोग से कांग्रेस को जन्म दे बैठे हैं। आर्य समाज ने और कांग्रेस ने बिना तोप-तलवार के सात समुद्र पार के डोमों को तो संगठित होकर यहाँ से भगा दिया है, लेकिन उनके डोम यहीं रह गये हैं। भारत स्वतन्त्र हुआ। नया भारतीय संविधान बना। एक ब्राह्मण और धाल्मीकिया को समानता का दर्जा सामाजिक असमर्थता निवारक कानून बनाकर दिया गया है। छुआछूत भेदभाव रखने वालों पर जुर्माना और सजा की व्यवस्था की गई है, फिर भी अंग्रेजों के डोम दलित एवं शोषित वर्ग वालों के साथ छुआछूत भेदभाव रखते हैं। पंडित वही है जो अपनी आत्मा के समान सबकी आत्मा को समझता है। ऊंच जन्म नीच करतूती कतई करता ही नहीं है। जब तक दुर्जनता नहीं छोड़ते, तब तक चाहे कोई आर्य-समाजी बनता है या कांग्रेसी बनता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मानव-मानव एक हैं, सभी मानव उस परम-पिता प्रभु की सन्तान हैं।

(पौड़ी गढ़वाल) कोलखंडी —**बुद्धिवल्लभ आर्य**

एक महान् कार्य

आदरणीय भारतेन्द्रनाथ जी, सादर नमस्ते।

आपका भेजे हुए जन-ज्ञान साप्ताहिक का प्रथम अंक मिला। पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। शताब्दी वर्ष में आपने यह महान् गुरुतर कार्य किया है। इसके लिए हम सभी की ओर से आपको धन्यवाद ईश्वर से प्रार्थना है कि आपको शक्ति प्रदान करें आपका यह कार्य और भी सुदृढ़ हो और भविष्य में इसी प्रकार नई-नई रोशनी से संसार जगमगा उठे। दयानन्द संस्थान आर्य जगत् की महती सेवा कर रहा है और अज्ञान को नष्ट करने में आपके जन-ज्ञान प्रकाशन का महान् योगदान है। मैं आपको बड़े हर्ष पूर्वक लिख रहा हूं कि जन-ज्ञान से प्रेरणा लेकर हम लोगों ने यहां 'आर्यसमाज' का नया गठन किया है।

भरुआ सुमेरपुर (हमीरपुर) —**एक पाठक**

साप्ताहिक जागृति का कार्य करेगा

आज आप द्वारा सम्पादित "जन-ज्ञान साप्ताहिक" की दोनों प्रतियों को देखने का अकस्मात् सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह जानकर अतीव हर्ष हुआ कि आपने "जनज्ञान मासिक" को साप्ताहिक में परिणत कर दिया है।

निःसन्देह यह साप्ताहिक पत्रिका आर्यसमाज शताब्दी वर्ष में जागृति का कार्य करेगी। वस्तुतः यह कार्य वर्तमान समय में अतीव आवश्यक था।

यह "जनज्ञान" साप्ताहिक पत्रिका "इडा सरस्वती मही" अर्थात् मातृ भाषा मातृ संस्कृति तथा मातृभूमि की सच्ची सेवा एवं प्राच्य परिप्रेक्ष्य में नव्य आदर्शों की प्रतिष्ठा करती हुई "सत्यं-शिवं-सुन्दरं" को साकार रूप देने में सक्षम और सफल काम हों। आपके सम्पादन काल में यह पत्रिका सर्वश्रेष्ठ पत्रिका का पद प्राप्त करे।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

—**अभय प्रकाश वेदालंकार**

(पृष्ठ ६ का शेष)

ऋत ब्रह्म प्राप्ति का प्रथम द्वार था तो यह सत्संग द्वितीय द्वार है—और इसके बाद तो साक्षत् ब्रह्म वदिष्यामि)।

अधिक न लिखते हुए यहां इतना ही कह देना पर्याप्त है कि जहां हम अपने निजू जीवनों में पुरुषार्थमयी दिनचर्या का पालन करें वहाँ हम अपने सामाजिक जीवन में भी इस बात का ध्यान रखें कि उदारचेता (ददता) अहिंसक मनोवृत्ति वाले (अघ्नता) ज्ञान सम्पन्न (जानता) लोगों के साथ ही हम सम्पर्क रखें (संगमेमहि)।

८. उप-संहार

ऐसा करने से ही हमारी सदैव सत्य में स्थिति हो सकेगी। इसी मार्ग पर चलने से हम क्रमशः तामस व राजस स्थिति से ऊपर उठ कर 'नित्य सत्वस्थ' हो सकेंगे, इस प्रकार सदैव सात्विक स्थिति में रहने के बाद तो गुणों से ऊपर उठ त्रिगुणतीत 'निस्त्रैगुण्य" मोक्ष की स्थिति में पहुंचना हो जायेगा। परन्तु उसका ध्यान न कर आज तो हम इतना ही दृढ़ निश्चय करें कि हम नियमित व सत्संग-मय जीवन को बिताते हुए "काम अर्थ व धर्म" का अर्जन करेंगे, "ऋग्, यजु व साम" के काम्य (प्रिय) बनेंगे, "पार्थिव अन्तरिक्ष व दिव्य" विजय के करने वाले होंगे, तमोगुण व रजोगुण से ऊपर उठ कर सत्वगुण में अव-स्थित होंगे. "इडा व सरस्वती" की उपासना के बाद "भारती मही, के उपासक होंगे, अपने जीवन क्षेत्र को व्यापक बनाते हुए बन्धन ग्रन्थि को उत्तरोत्तर अधिकाधिक शिथिल कर डालेंगे। और इस प्रकार बन्धन शून्य मोक्ष स्थिति में ले जाने वाले कल्याण मार्ग के पथिक बनेंगे।

अन्त में एक शब्द में यही कहना है कि (१) पुरुषा-र्थमयी दिनचर्या व (२) सत्संग यही है, ऋत व सत्य, यही है कल्याण का मार्ग।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सफलता की सीढ़ी

महाराजा पाण्डु के थे पांच पुत्र। नाम थे उनके युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। ये पांचों भाई गुरुवर्य आचार्य द्रोण से सीखा करते थे धनुर्विद्या।

एक दिन गुरु द्रोणाचार्य ने उनकी परीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। एक वृक्ष पर बैठा हुआ था एक पक्षी। आचार्य उसकी ओर संकेत करते हुए बोले "शिष्यो तुम्हें इस पक्षी के बाएं नेत्र पर बाण मारना है। तैयार होकर अपना निशाना साध लो और फिर तुम बाण चलाना।"

सभी शिष्य पूर्णतः तैयार हो गए। तभी आचार्य ने सर्वप्रथम भीम से पूछा "बोलो तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है ?"

भीम का उत्तर था "गुरुदेव मुझे तो वृक्ष की जड़ के अतिरिक्त इसका अन्य सारा भाग और पक्षी तथा उसकी दोनों आँखें भली भाँति दृष्टि-गोचर हो रही हैं।"

तदुपरांत जब आचार्य ने सहदेव से प्रश्न किया तो उसका उत्तर था 'मुझे तो शाखाएं, पत्ते, फल और पक्षी सभी दिखाई दे रहे हैं।"

नकुल ने इसी प्रश्न के उत्तर में कहा कि "मैं तो वृक्ष की शाखा और उस पर बैठे हुए पक्षी मात्र को देख पा रहा हूं।"

अब आई युधिष्ठिर की बारी तो वह बोले "आचार्य जी मुझे तो केवल वह पक्षी ही नजर आ रहा है।"

सबसे बाद आचार्य द्रोण ने अर्जुन से भी यही पूछा "अर्जुन तुम्हें क्या-क्या दृष्टिगोचर हो रहा है ?" उसने उत्तर दिया—मुझे उस पक्षी के बांए नेत्र के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा।"

आचार्य हर्षोत्फुल्ल हो उठे और बोले "अर्जुन ! तुम हो इस परीक्षा में सफल रहे हो। तुम्हारा ही बाण इस पक्षी के बांए नेत्र में ठीक-ठोक लगेगा।"

यह कहते हुए आचार्य ने अर्जुन को बाण चलाने का आदेश दे दिया। अजुन ने बाण चलाया तो पक्षी अगले ही क्षण बाण समेत धरती पर आ गिरा।

आचार्य और शिष्य तत्काल दौड़ कर वहां पहुंचे जहाँ पक्षी गिरा था। उन्होंने देखा कि बाण पक्षी की बांई आंख में लगा है।

गुरु द्रोणाचार्य ने अर्जुन को अपनी छाती से लगाते हुए कहा "लक्ष्य वही भेद सकता है, जिसे अपने लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जिसकी दृष्टि चारों ओर जाती है, जिसका मन चंचल है अर्थात् जो एक समय पर अपनी सारी शक्ति एक ही काम में न लगाकर अनेक कार्यों में वांट देता है, उसे अपने जीवन में कदापि सफलता नहीं मिल पाती। सफलता की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है केवल एक लक्ष्य पर ही अपना सारा ध्यान लगा देना। यही है जीवन में सफलता प्राप्त करने की प्रथम सीढ़ी। अर्थात् एकाग्रता ही है सफलता की कुंजी। ●

—आभा

जग में वैदिक रीति बढ़े

मेरा स्वप्न पूर्ण हो जग में वैदिक ज्ञान बढ़े,
रीति नीति से पूर्ण धर्म का शावत् सम्मान बढ़े।
प्रेम नेह की धार वहे इस धरती के प्रांगण में,
रहे शांति की सरिता बहती वसुधा के आंगन में।
कभी न मन में आए अपने द्वेष भाव की धारा,
मेरे मन को कभी न बाँधे तृष्णाओं की कारा।
रीति नीति हो सदा धर्ममय वही दिखाए पथ को,
भारी बाधाएं ना रोकें कभी सत्य के रथ को।
भीषण विपदा में भी मेरा, कभी न डूबे मन,
पंथ सदा निर्मल हो मेरा डटा रहूँ हर क्षण।
डिगूं न मैं कर्त्तव्य मार्ग से यही मिले आशीष,
तारक तुम ही बाधाओं से मेरे हो जगदीश।
राष्ट्रहेतु सर्वस्व समर्पण ही हो मेरी आन,
केवल शब्दों तक ही सीमित हो न कभी आह्वान।
शंकर सम सर्वस्व त्याग ही बने हमारी टेक,
रामचन्द्र सी मर्यादाएं ही प्रेरक रहें अनेक।
नीरसता में राह दिखाती मुझे तुम्हारी वाणी,
जीवन को सत्यपथ पर लाए वह वाणी कल्याणी।

बनारसी सिंह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सहनशीलता है तेरी न्यारी
धन्य-धन्य तू जीभ हमारी

शरीर का एक अनिवार्य हिस्सा है जीभ भी। किन्तु इसकी स्थिति कितनी विचित्र है। यह बेचारी है नितांत सहनशील। यह सब कुछ सहन करती जाती है और वह भी दाँतों के एक अज्ञात से उपकार के बदले में यद्यपि यह भी सत्य है कि दाँतों के जिस उपकार के बदले में यह सब कुछ सहन करती है, इसका लाभ यह अकेली ही नहीं पाती, दाँत भी इसका पूरा योग करते हैं।

क्या आप बता सकते हैं कि वह लाभ कौन-सा है? जिसके समक्ष नतमस्तक होकर बेचारी जीभ अपने कोमल तन पर दिन-रात में अनेक बार दाँतों की मार सहते हुए भी गुहार नहीं लगाती, पुकार नहीं लगाती।

बात यह है कि दाँतों के टूट जाने की स्थिति में मुख खोलने पर जो वायु भीतर जाती है, वह जीभ से कही जाने वाली बात में से सफाई निकाल देती है। परिणामतः श्रोता को बात भली भाँति सुनाई नहीं पड़ पाती और फिर बेचारी बदनामी पाती है। इसीलिए यह विवश जीभ दाँतों से प्रताड़ित होने पर भी इनकी दीर्घायु के लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना ही करती रहती है।

इस प्रकार थोड़े से सम्मान के लिए बेचारी जीभ प्रहार सहकर भी इन दाँतों की स्वच्छता के कार्य मे दक्षता प्रदर्शित करने में कभी कोई आनाकानी नहीं करती।

और फिर केवल दाँतों की ही नहीं, अपितु समग्र शरीर की ही यह जीभ बेचारी सेवा करती है। यह तो हमें मीठे, कड़ुवे, तीखे, खट्टे और चटपटे स्वाद का ज्ञान कराती है। यह भी सत्य है कि दाँतों का कार्य खाद्य-पदार्थों को भली प्रकार चखकर शरीर को शक्ति प्रदान करना है, किन्तु जीभ की जिम्मेदारी तो इन दाँतों और हाथों से भी कई सौ गुनी है।

किन्तु यह न समझिए कि दाँतों के बीच असहाय सी दिखने वाला यह जीभ वास्तव में ही दुर्बल है। इतिहास साक्षी है कि इसी ने बड़े बड़े साम्राज्य मिटाए है तो अनेक बनाए हैं। इसमें यह महान् क्षमता निहित हैं कि यह राजा को रंक बना सकती है तो निर्धनों के घर पर सुख समृद्धि का अम्बार भी लगा सकती है। जो काम अनेक स्थितियों में हाथ नहीं कर पाते वे जीभ अर्थात् कंठ के मीठे स्वर की अभिव्यक्ति जीभ द्वारा किए जाने से हो जाते हैं।

व्यक्ति के लिए वाणी का महत्व जीवन से भी अधिक होता है, इस बात को सिद्ध करने हेतु भी सारे शरीर में से बेचारी जीभ को ही सर्वाधिक बलिदान देना पड़ता है।

प्रभु की बड़ी ही महिमामयी रचना है यह जीभ इसे बड़े-बड़े पापड़ बेलने पड़ते हैं। बात बिगड़ जाए तो इसे बनानी पड़ती। सच्चाई पर मिलने वाले पुरस्कार में चाहे उसका अंश शून्य के तुल्य ही हो, किन्तु झूठ के लिए सारा दोष इसी पर मढ़ दिया जाता है।

इसी जीभ के सहारे अनेक लोग अपने बिगड़े काम संवारते हैं किन्तु हम हैं कि परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाए तो अपना सारा आक्रोश और क्षोभ इसी बेचारी पर झाड़ते हैं। आपने भी शायद कभी कहा हो और न कहा हो तो यह कहते हुए तो अनेक लोगों को सुना ही होगा "भाई मैं तो ऐसे दिन काट रहा हूं, जैसे कि बत्तीस दाँतों के मध्य में जीभ।" परन्तु वास्तविकता यह है कि जीभ की तुलना में हम सहनशीलता का शतांश नहीं और न ही अनुशासन पालन एवम् त्याग की भावना ही।

यदि संसार में सुख पाना है तो अपनी जीभ से सीखिए। इसे वाचालता का शिकार न होने दीजिए और इसके समान थोड़े से उपकार के बदले में भी दूसरों का आभार व्यक्त करना सीखिए। क्योंकि इसी से आप अपने पूज्यजनों के प्रति श्रद्धा व्यक्त कर उनका पावन आशीर्वाद पा सकते हैं तो इस से ही आप जीवन में सत्यं शिवम् सुन्दरम् का प्रतिदान पा सकते हैं। और कुछ भी कीजिए किन्तु इस बेचारी को वृथा ही न निकलने दीजिए। यह सहनशीलता की मन्त्र दाता है। इससे सत्य का यश पाइए, असत्य को दुत्कारिए। स्वयं को इसके उदाहरण से सुधारिए। यही जीभ आपको ऊंचा उठा सकती है और यही पतन के कगार पर भी ला सकती है। अतएव इसकी महिमा परखिए! निरखिए! इसे सदैव संवारिए यह भी कल्याण मार्ग की एक सीढ़ी है।

—कु० आभा

क्या आप ३०१) भेजकर आजीवन सदस्य नहीं बन सकते?

क्या आप के मन में कभी यह इच्छा नहीं जागती कि आपका अपना भी कोई अच्छा पत्र हो?

भूलिए नहीं—शताब्दी वर्ष का उपहार जन-ज्ञान साप्ताहिक—आपके सहयोग की राह देख रहा है—कैसे भी करें पर ३०१) भेजकर हमें आगे बढ़ने में सहयोग दें।

—संपादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्य ज्ञान से प्रसार के लिये प्रतिज्ञा बद्ध हो विश्व अशांति के कारण दूर किये जाएं

—भारतेन्द्रनाथ

●●●●

चिर अनन्त भावनाओं के साथ, सृष्टि की समस्त शक्तियां प्रकाश चाहती हैं। शक्तियाँ दो होती हैं, लौकिक और अलौकिक। लौकिक प्रकाश के बिना लौकिक शरीर कुछ भी कर सकने में असमर्थ है, और अलौकिक प्रकाश अर्थात् ज्ञान के बिना अलौकिक शक्ति, मस्तिष्क की, विचार की, सर्वथा निष्प्राण है। इसलिए बाह्य प्रकाश की ही भांति, मस्तिष्क के आभ्यातंरिक प्रकाश की भी निश्चित आवश्यकता होती है। यह निर्विवाद है। बाह्य प्रकाश की उत्तम व्यवस्था-सृष्टि के रचयिता द्वारा जब आदि में ही की गई, तब यह निःशंसयित है, कि आन्तरिक प्रकाश ज्ञान (वेद) की व्यवस्था भी मानव मस्तिष्क के पथ-प्रदर्शन व प्रत्येक जीवधारी की कल्याण कामना के लिए, असंशोधनीय रूप से अवश्य ही की गई होगी।

लौकिक प्रकाश का आधार जड़ है। वह दृष्टि योग्य है, अतः प्रत्यक्ष, होने के कारण सदा सर्वमान्य ही रहा। परन्तु ज्ञान का आधार विचार है, और विचार अनुभव-ज्ञान-शक्ति-गम्य हैं। उन्हें अनुभूति-कल्पना, भावना का आश्रय लेना पड़ता है, अतः समय चक्र के साथ साथ उन महती भावनाओं में, मानव अपनी स्मृति, कल्पना, सुविधा द्वारा संशोधन करता गया, और सत्य का मूल आधार 'ज्ञान', मूल रूप में उससे दूर होता हुआ विवाद का विषय बन गया। परिणामस्वरूप अज्ञान फैला और यही अज्ञान विश्व-अशान्ति का कारण बना।

सत्य ज्ञान का आधार त्याग है, त्याग का आधार प्रेम, और प्रेम का परिणाम शान्ति है। त्याग का बल ले, प्राचीन काल में स्वर्गीय आनन्द की प्रवाहित धारा का वर्णन हम आज भी मुग्ध कण्ठ से करते ही रहते हैं। अतः यह निर्विवाद है कि पुनः सुख शान्ति और प्रकाश के लिए ज्ञान की लहरों का जन-जन में प्रसार परमावश्यक है।

वैदिक ज्ञान की महत्ताएं

1. वैदिक ज्ञान हमें संकीर्ण न बना कर मानव मात्र की एकता व एक पिता के पुत्र होने के नाते बंधुत्व के भाव द्वारा, विश्व-कुटुम्ब की सुखद नींव डालता है।

2. यह ज्ञान भोग की प्रेरणा के स्थान पर, त्याग की साधना बताता है। त्याग बिना सन्तोष, और सन्तोष बिना शान्ति असम्भव है।

3. जीवन का चरम उद्देश्य भोग विलास आदि शारीरिक सुख मात्र ही न मान कर, आत्मा का अलौकिक आनन्द मान, सदैव प्रभु की प्रकाशमयी गोदी की ओर अग्रसर कर ज्ञान-ज्योति-पुंज-किरण-पथ का पथिक बनाता है। इस लक्ष्य का अनुसरण करने से हमारे अन्तस् का गहन अन्धकार, शून्य में विलीन हो जाता है। और परिणामस्वरूप प्राणी आनन्द (शान्ति) पूर्वक जीवन यापन करता है।

4. यह ज्ञान हमें निरन्तर कार्य करने की प्रेरणा देता है। यशस्वी, धनपति, वीर और समुन्नत होने की आज्ञा भी हमें मिलती है। पर हमारा धन और बल निर्बल निर्धन के संरक्षण के लिए हो, शोषण के लिए नहीं।

5. 'यज्ञ' सत्य-ज्ञान का प्रेरणामय रूप है। यज्ञ का आधार ही सर्वकल्याण कामनामय है। त्यागवाद का उच्चतम विचार यज्ञ की विशाल भावना का प्रतिबिम्ब है। निरन्तर कार्य करते रहने पर भी सब कुछ निष्काम कामना से ही करना कितना पवित्र मार्ग है।

6. बाह्य, समानता की, फैली हुई भावना के स्थान पर, विचारों की वास्तविकता एकता की प्रभावपूर्ण आज्ञा हमें प्राप्त होती है।

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः समान मस्तु वा मनो यथावः सुसहासति। ॥ऋग्वेद॥

अर्थात् एक तुम्हारा अभिप्राय हो, और अन्तःकरण एक समान हो, तुम्हारा मन एक समान हो, जिससे तुम्हारा सुसाह्य होगा अर्थात् संघ शक्ति की दृढ़ता होगी।

7. धन के व्यय और एकत्रित करने की समस्या भी आज विषम है। दूसरे को दुःख देकर भी स्वयं सुख उठाने की भावना ने आज विश्व को नरक बना रखा है। वेद में धन व्यय करने का कितना विवेक पूर्ण आदेश है।

शतहस्त समाहार सहस्र हस्त संकिर। ॥अथर्ववेद॥

सैकड़ों हाथों से इकट्ठा कर और सहस्र हाथों से बखेर। तात्पर्य यह है कि जितनी तीव्र इच्छा धन एकत्रित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने की हो उतना ही उत्तम है परन्तु उसका लालच न कर अपितु उससे भी अधिक मात्रा में बिना उसका लोभ किये उसे जहां आवश्यकता हो आंख मूंद कर डाल दे।

8. आज विरोधी पक्ष के लिए प्रत्येक उचित अनुचित व्यवहार क्षम्य हैं। किन्तु वेद का आदर्श कितना ऊँचा है।

भद्रंमनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।—ऋक॥ शत्रुओं को संहारने वाले संग्राम में भी मन को नेक रखो।

शान्ति की नींव रखने, सद्भावना पैदा करने के लिए क्या इतना ऊँचा आदर्श कहीं प्राप्त हो सकता है?

9. आत्मा की अमरता, जीवन की उच्चता का प्रकाश स्तम्भ है। मानव की सारी पाप कामनाएं, दुर्बलताएं, आत्मा की अमरता विश्वास के साथ नष्ट हो जाती है। कितनी महती साधनामय प्रतिज्ञा वैदिक पुरुष करता है।

प्राये प्राये जिगीवांसः स्याम॥

हम प्रत्येक युद्ध में विजय प्राप्त करें। जीवन में कहीं भी हार न हो।

10. राष्ट्र की पुनीत सम्पत्ति को जिस ऊंचे भाव से वैदिक विचार धारा ने ग्रहण किया वह अलभ्य है राष्ट्र से हमारा सम्बन्ध कैसा हो इसका कितना प्रशस्त वर्णन है।

(1) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।—अथर्व

भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूं।

देश भक्ति की सुन्दर तरंगों को प्रवाहित करने का कितना पावन भाव है।

तात्पर्य यह है कि वैदिक ज्ञान की आभा द्वारा प्रभावित मनुष्य सौ वर्ष तक स्वस्थ और स्वतन्त्र होकर जीना चाहता है। साथ ही साथ दूसरे को भी जीने देना चाहता है। वह सभी के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होता है। वह धन चाहता है, दूसरों का दुःख दूर करने के लिए। वह बल चाहता है, निर्बल की रक्षा के लिए। वह विद्या चाहता है संसार के पथ-प्रदर्शन के लिए। वह मानव के बीच उठी हुई भेद भाव की दीवारों को चकनाचूर करना चाहता है। और चाहता है जीवन संग्राम में सदा विजयी होते हुए अज्ञान, अन्याय और अभाव का उन्मूलन।

आज भारत में ही गाँव और प्रदेश के प्रदेश ऐसे पड़े हुए हैं जो वैदिक आभा शून्य होकर कुरीतियों के जाल में अपने को समाप्त कर रहे हैं। छुआछूत, दहेज प्रथा, मूर्ति-पूजा, पाखण्डी और धूर्तों की पूजा, झूठी और घमण्ड भरी मर्यादाएं भोग और विलास को चरम लक्ष्य स्वीकार करना, पदलिप्सा, सामाजिक व राजनीतिक भ्रष्टाचार, रिश्वत, अन्याय करने और सहने की भावना और सबसे जहरीली दिखावे की भावना, धन का दुरुपयोग उसे निर्धनों के उपयोग के लिये छोटे-छोटे घरेलू उद्योग धन्धों में न लगाना, कर्तव्य को मूल सदाचार, नैतिकता का महत्व न लगाना, कर्त्तव्य को मूल सदाचार, नैतिकता का महत्व न स्वीकार करना।' यह कतिपय मूल बुराइयां हैं। जिन्होंने राष्ट्र को आज बर्बाद कर रखा है।

आओ हम निश्चय करें कि कम से कम एक नवीन व्यक्ति को अवश्य अपने आचरण द्वारा प्रभावित कर, क्रियात्मक पग उठायेंगे, और जहां तक भी हो सकेगा, अपने अपने दायरे में लोगों को सत्य ज्ञान से प्रकाशित करने के लिए, हम सदा अधिक से अधिक प्रयत्न करेंगे।

अधिक से अधिक व्यक्तियों को 'आर्य-सदस्य" बनाएं।

नित्य समय पर काम करो

नित्य समय पर काम करो,
फिर थोड़ा विश्राम करो।
जब सूरज छिप होती रात,
याद रखो भइया यह बात।
भोजन कर—जल्दी सो जाओ,
प्रातः उठो प्रभु गुण गाओ।
फिर सब को प्रणाम करो,
नित्य समय पर काम करो॥ १॥
मात पिता की आज्ञा मान,
करो गुरुजन का सम्मान।
लगा प्रेम से अपना ध्यान,
याद करो सब पाठ सुजान।
नित्य सुबह व्यायाम करो,
नित्य समय पर काम करो॥ २॥
बनाना चाहो सब के प्यारे,
मात पिता के सदा दुलारे।
सब का आदर करना सीखो,
सदा पाप से डरना सीखो।
नहीं गलत कुछ काम करो,
नित्य समय पर काम करो॥ ३॥

—वीरेन्द्रपाल सिंह

मुद्रक-प्रकाशक-सम्पादक पंडिता राकेश रानी द्वारा सैनी प्रिन्टर्स दिल्ली में छपा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋग्वेद के द्वितीय खंड के विमोचन हेतु प्रति अर्पित करते हुए संस्थान की प्रधान मंत्री पंडिता राकेश रानी : पास में खड़े हैं प्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसीसिंह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi